श्रीराम

यशोधरा

मैथिलीशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथम वार
१९९०

मूल्य
१॥)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित
और प्रकाशित।

शुल्क

भाई सियारामशरण,

तुम कहानियाँ लिखते-पढ़ते हो। सुनो, एक कहानी।

सन्ध्या हो रही थी। किसी गाँव के एक कृषक गृहस्थ के चत्वर पर कोई हारा-थका पथिक अपनी पोटली रख कर बैठ गया और अपने दुपट्टे के छोर से व्यजन करने लगा। गृहस्थ ने घर से निकल कर कहा—"महाराज, यहाँ ठहरने का स्थान गाँव के बाहर का शिवालय है।" आगन्तुक ने दीन भाव से कहा—"भैया, हमें कुछ न चाहिए। थके-माँदे कहाँ जायँगे? रात भर यहाँ एक ओर पड़े रहने दो। सबेरे अपना मार्ग लेंगे।"

"कुछ कथा-वार्ता रामायण आदि कहते हो?"

"यदि इसके बिना आश्रय न मिले तो कुछ सुना दूँगा।"

"तब पड़े रहो।"

गृहस्थ भीतर चला गया। तनिक देर में उसका लड़का बाहर से आया। पथिक को उसी भाँति उससे भी निबटना पड़ा। परन्तु वह माता (देवी) के भजनों का प्रेमी था। पथिक ने उनके लिए भी हामी भरी।

और थोड़ी देर में उसका छोटा भाई आ पहुँचा। उससे भी वही झझट। वह आल्हा का रसिक था। पथिक को आल्हा सुनाना भी स्वीकार करना पड़ा।

रात में सब खा-पी कर बैठे। पथिक का शरीर चूर-चूर हो रहा था। इधर श्रोता अपनी अपनी कह रहे थे। गृहस्थ ने कहा—"महाराज, हो जाने दो, एक-आध चौपाई।" छोटे लड़के ने क्रम भग करते हुए, बड़े भाई के कुछ कहने के पहले ही कहा—"कहाँ की चौपाई ? महाराज, आल्हा होने दो, मैं ने पहले ही कह दिया था।" बड़े लड़के ने बिगड़ कर कहा—"मूसल बदलना है हमें आल्हा से ? महाराज, माता का भजन आरम्भ करो।"

सब अपनी अपनी बात के लिए हठ करने लगे। पथिक ने किसी भाँति बैठ कर कहा—"भाई, मुझे ले कर क्यों आपस में कलह करते हो ? लो, सब सुनो—

मगल भवन, अमगलहारी,
द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी।

हाय ! यहाँ भी वही उदासीनता ! अमिताभ की आभा में ही उनके भक्तों की आँखें चौंधिया गईं और उन्होंने इधर देख कर भी नहीं देखा । सुगत का गीत तो देश विदेश के कितने ही कवि-कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता देख कर मुझे शुद्धोदन के शब्दों में यही कहना पड़ा है कि—

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको ।

अथवा तुम्हारे शब्दों में मेरी वैष्णव-भावना ने तुलसीदल दे कर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रक्खा है । कविरानी के राज-भोग-व्यजन मैं कहाँ पाऊँगा ? देखूँ, वे इस अकिञ्चन की यह 'खिचड़ी' स्वीकार करते हैं या नहीं !

लो भाई, तुम्हें इससे सन्तोष हो या नहीं, तुम्हारे अधिकार का शुल्क चुकाने की चेष्टा मैं ने अवश्य की है । स्वस्तिरस्तु ।

चिरगाँव,	तुम्हारा
प्रबोधिनी १९८९	मैथिलीशरण

कथा-सूत्र

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र रूप में भगवान् बुद्धदेव का अवतार हुआ था। उनकी जननी मायादेवी उन्हें जन्म दे कर ही मानों कृतकृत्य हो कर मुक्ति पा गईं। शुद्धोदन की दूसरी रानी नम्र जननी महाप्रजापती ने उनका पालन-पोषण किया।

उनका नाम सिद्धार्थ और गौतम भी था। सिद्धि-लाभ करके वे बुद्ध कहलाये। सुगत, तथागत और अमिताभ आदि और भी उनके अनेक नाम हैं।

बाल्यकाल से ही उनमें वीतराग के लक्षण प्रकट होने लगे थे। शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी और भी वृद्धि हुई। शुद्धोदन को चिन्ता हुई और उन्हें संसारी बनाने के लिए उन्होंने उनका ब्याह कर देना ही ठीक समझा। खोज और परीक्षा करने पर देवदह की राजकुमारी यशोधरा ही जिसे गोपा भी कहते हैं, उनकी वधू बनने योग्य सिद्ध हुई।

यशोधरा के पिता महाराज दण्डपाणि ने सम्बन्ध स्वीकार करने के पहले वर की विद्या बुद्धि के साथ उसके बल-वीर्य की भी परीक्षा लेनी चाही। सिद्धार्थ ने शास्त्र शिक्षा के साथ ही साथ शस्त्र शिक्षा भी ग्रहण की थी। परन्तु शास्त्र की ओर ही पुत्र का मनोयोग समझ कर पिता को कुछ चिन्ता हुई। तथापि कुमार सब परीक्षाओं में अनायास ही उत्तीर्ण हो गये। "टूटत ही धनु भयेहु विवाहू" के अनुसार यशोधरा के साथ उनका विवाह हो गया।

पिता ने उनके लिए ऐसा प्रासाद बनवाया था जिसमें सभी ऋतुओं के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। किसी राग रंग और आमोद प्रमोद की कमी न थी। परन्तु भगवान् तो इसके लिए अवतीर्ण हुए नहीं थे। पिता का प्रबन्ध था कि जो कुछ स्वस्थ, शोभन और सजीव हो उसी पर उनकी दृष्टि पडे। परन्तु एक दिन एक रोगी को, दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृतक को देख कर, संसार की इस गति पर गौतम को बड़ी ग्लानि एवं करुणा आई और उन्होंने इसका उपाय खोजने के लिए एक दिन, अपना घर छोड़ दिया। उनके इस प्रयाण को महाभिनिष्क्रमण कहते हैं।

तब तक उनके एक पुत्र भी हो चुका था। उसका नाम था राहुल। अभी उसके जन्म का उत्सव भी पूरा न हुआ था कि कपिलवस्तु में उनके गृह त्याग का शोक छा गया।

रात को अपने सेवक छन्दक के साथ कन्थक नामक अश्व पर चढ़ कर वे चल दिये।

जिस प्रकार रुग्ण, वृद्ध और मृतक को देख कर वे चिन्तित हुए थे उसी प्रकार एक दिन एक तेजस्वी सन्यासी को देख कर उन्हें सन्तोष भी हुआ था। अपने राज्य की सीमा पर पहुँच कर उन्होंने राजकीय वेश भूषा छोड़ कर सन्यास धारण कर लिया और रोते हुए छन्दक को कपिलवस्तु लौटा दिया। सब के लिए उनका यही सन्देश था कि मैं सिद्धि-लाभ करके लौटूँगा।

सिद्धार्थ वैशाली और राजगृह में विद्वानों का सत्संग करते हुए गयाजी पहुँचे। राजगृह के राजा बिम्बसार ने उन्हें अपने राज्य का अधिकार तक दे कर रोकना चाहा, परन्तु वे तो स्वयं अपना राज्य छोड़ कर आये थे। हाँ, सिद्धि-लाभ करके बिम्बसार को दर्शन देना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

राजगृह से पाँच ब्रह्मचारी भी तप करने के लिए उनके साथ हो लिये थे, जो पंचभद्रवर्गीय के नाम से प्रसिद्ध हैं।

निरजना नदी के तीर पर गौतम ने तपस्या आरम्भ कर दी। बरसों तक वे कठोर साधन करते रहे परन्तु सिद्धि का समय अभी नहीं आया था।

उनका विगलितवसन-शरीर आतप, वर्षा, शीत और क्षुधा के कारण ऐसा अवश और जड हो गया कि चलना फिरना तो दूर, उसमें हिलने-डुलने की भी शक्ति न रह गई। विचार करने पर उन्हें यह मार्ग उपयुक्त न जान पड़ा और उन्होंने मिताहार स्वीकार करके योग साधन करना उचित समझा। किन्तु उनके साथी पाँचों भिक्षुओं ने उन्हें तपोभ्रष्ट समझ कर उनका साथ छोड दिया।

गौतम ने उनकी निन्दा पर दृक्पात भी नहीं किया। वे निन्दास्तुति से ऊपर उठ चुके थे। परन्तु निर्बलता के कारण वे भिक्षा करने के लिए भी न जा सकते थे, इधर उनके शरीर पर वस्त्र भी न था। उसकी उन्हें आवश्यकता भी न थी। परन्तु लोक में भिक्षा करने के लिए जाने पर लोक की मर्यादा का विचार वे कैसे छोडते?

किसी प्रकार खिसक कर पास के श्मशान से एक वस्त्र उन्होंने प्राप्त किया और उसे धारण कर लिया।

गाँव की कुछ लडकियाँ उन्हें कुछ आहार दे जाती थीं। उसी से उनमें चलने-फिरने की शक्ति आ गई।

सुजाता नाम की एक स्त्री ने उन्हें बड़ी सुस्वादु खीर भेंट की थी। उसे खा कर, कहते हैं भगवान् बहुत तृप्त हुए थे।

एक दिन निरंजना नदी को पार कर उन्होंने एकान्त में एक अश्वत्थ वृक्ष देखा। वह स्थान उन्हें समाधि के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ा। अन्त में वही वृक्ष बोधि-वृक्ष कहलाया और वहीं समाधि में निर्वाण का तत्व उनको दृष्टिगोचर हुआ।

इसके पहले स्वयं मार (वामदेव) ने उन्हें उस मार्ग से विरत करना चाहा। क्योंकि वह विषयों का विरोधी मार्ग था। सुन्दरी अप्सराएँ उनके सामने प्रकट हुईं। परन्तु वे ऐसे ऋषि-मुनि न थे जो डिग जाते।

मार ने लुभाने की ही चेष्टा नहीं की, उन्हें डराया धमकाया भी। कितनी ही विभीषिकाएँ उनके सामने आईं, परन्तु वे अटल रहे।

स्वयं जीवन्मुक्त हो कर भगवान् ने जीवमात्र के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया।

कर्मकाण्ड के आडम्बर की अपेक्षा सदाचार को उन्होंने प्रधानता दी और यज्ञों के नाम से होने वाली जीव हिंसा का घोर विरोध किया।

जो पाँच भिक्षु उनका साथ छोड़ कर चले गये थे उन्हींको सब से पहले भगवान् के उपदेश सुनने का सौभाग्य

प्राप्त हुआ। संसार भर में जिसकी धूम मच गई, काशी के समीप सारनाथ में ही आरम्भ में, उस धर्मचक्र का प्रवर्त्तन हुआ। वे भिक्षु उन दिनों वहीं थे।

रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु में भी यह समाचार कैसे न पहुँचता? शुद्धोदन ने बुद्धदेव को बुलाने के लिए दूत भेजे। परन्तु जो जो उन्हें लेने के लिए गये वे सब उनके दर्शन और उपदेश से स्वयं संसार-त्यागी हो कर उनके संघ में दीक्षित हो गये। अन्त में शुद्धोदन ने अपने मन्त्रि-पुत्र को, जो सिद्धार्थ का बाल्यसखा था, उन्हें लेने के लिए भेजा। वह भी भगवान् के संघ में प्रविष्ट हो गया परन्तु शुद्धोदन से प्रतिज्ञा कर आया था, इसलिए भगवान् को उनका स्मरण दिलाना न भूला।

भगवान् कपिलवस्तु पधारे। रात को वे नगर के बाहर उद्यान में रहे। सबेरे नियमानुसार भिक्षा के लिए निकले। इस समाचार से वहाँ हलचल मच गई। यशोधरा को बड़ा परिताप हुआ। शुद्धोदन ने खेदपूर्वक उनसे कहा—'क्या यही हमारे कुल की परिपाटी है?' भगवान् ने कहा—'नहीं, यह बुद्ध-कुल की परिपाटी है।'

भगवान् राजप्रासाद में पधारे। सबने उनका उचित स्वागत समादर किया। परन्तु यशोधरा उस समारोह में

सम्मिलित न हुई। उससे कहा गया तो उसने यही कहा—'भगवान् की मुझ पर कृपा होगी तो वे स्वयं ही मेरे समीप पधारेंगे।' अन्त में भगवान् ही उसके निकट गये और उस समय भी इस महीयसी महिला ने उन्हें राहुल का दान दे कर अपने महत्त्याग का परिचय दिया।

कैसे परित्राण हम पावें ?
किन देवों को रोवें-गावें ?
पहले अपना कुशल मनावें
वे सारे सुर-शक्र !
घूम रहा है कैसा चक्र !

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ ?
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ ।
तब है, जब ये दाँत उखाड़ूँ,
रह, भव-सागर-नक्र !
घूम रहा है कैसा चक्र !

सिद्धार्थ

१

घूम रहा है कैसा चक्र !
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र।

पिसो, पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक ?
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र ?
घूम रहा है कैसा चक्र !

कैसे परित्राण हम पावें ?
किन देवों को रोवें-गावें ?
पहले अपना कुशल मनावें
वे सारे सुर-शक्र !
घूम रहा है कैसा चक्र !

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ ?
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ ।
तब है, जब वे दाँत उखाड़ूँ,
रह, भव-सागर-नक्र !
घूम रहा है कैसा चक्र !

२

देखी मैं ने आज जरा !
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?

हाय ! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा ?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?

सौ सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक् ! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा !

रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा भरा ?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैं ने न तरा !

भोल युवक, क्या इसी लिए है
यह यौवन अनमोल हाय !
आकर इसके दाँत तोड़ दे,
जरा भग्न कर अंग-काय ?

भ्रता जीव, क्या इसी लिए है
यह जीवन का फूल हाय !
पका और कच्चा फल इसका
तोड़ तोड़ कर काल खाय ?

एक बार तो किसी जन्म के
साथ मरण अनिवार हाय !
बार बार धिक्कार, किन्तु यदि
रहे मृत्यु का शेष दाय !

अमृतपुत्र, उठ, कुछ उपाय कर,
चल, चुप हार न बैठ हार !
खोज रहा है क्या सहाय तू ?
मेंट आप ही अन्तराय !

४

कपिलभूमि-भागी, क्या तेरा
यही परम पुरुषार्थ हाय !
खाय-पिये, बस जिये-मरे तू,
यों ही फिर फिर आय-जाय ?

अरे योग के अधिकारी, कह,
यही तुझे क्या योग्य हाय !
भोग भोग कर मरे रोग में,
बस वियोग ही हाथ आय ?

सोच हिमालय के अधिवासी, निवासी
यह लज्जा की बात हाय !
अपने आप तपे तापों से
तू न तनिक भी शान्ति पाय ?

बोल युवक, क्या इसी लिए है
यह यौवन अनमोल हाय !
आकर इसके दाँत तोड़ दे,
जरा भग कर अंग-काय ?

बता जीव, क्या इसी लिए है
यह जीवन का फूल हाय !
पका और कच्चा फल इसका
तोड़ तोड़ कर काल खाय ?

एक बार तो किसी जन्म के
साथ मरण अनिवार हाय !
बार बार धिक्कार, किन्तु यदि
रहे मृत्यु का शेष दाय !

अमृतपुत्र, उठ, कुछ उपाय कर,
चल, चुप हार न बैठ हाय !
खोज रहा है क्या सहाय तू ?
मेट आप ही अन्तराय।

५

पड़ी रह तू मेरी भव-भुक्ति !
मुक्ति-हेतु जाता हूँ यह मैं, मुक्ति, मुक्ति, बस मुक्ति !
मेरा मानस-हंस सुनेगा और कौन सी युक्ति ?
मुक्ताफल निर्द्वन्द्व चुनेगा, चुन ले कोई शुक्ति !

प्रच्छन्न रोग हैं प्रकट भोग,
सयोग मात्र भावी वियोग।
हा ! लोभ-मोह में लीन लोग
भूले हैं अपना अपरिणाम !
ओ क्षणभगुर भव, राम राम !

यह आर्द्र-शुष्क, यह उष्ण-शीत,
यह वर्त्तमान, यह तू व्यतीत।
तेरा भविष्य क्या मृत्यु-भीत ?
पाया क्या तू ने धूम-धाम ?
ओ क्षणभगुर भव, राम राम !

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल,
झड़ने को हैं सब झटित झूल।
चख देख चुका हूँ मैं, समूल—
सड़ने को हैं व अखिल आम !
ओ क्षणभगुर भव, राम राम !

रहने दे वैभव यश'शोभ,
जब हमीं नहीं, क्या कीर्तिलोभ ?
तू क्षम्य, करूँ क्यों हाय क्षोभ,
थम, थम, अपने को आप थाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

क्या भाग रहा हूँ भार देख ?
तू मेरी ओर निहार देख !
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह, वह कब तक है प्राण-पात्र ?
भीतर भीषण कंकाल मात्र,
बाहर बाहर है टीम-टाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

प्रच्छन्न रोग हैं प्रकट भोग,
सयोग मात्र भावी वियोग!
हा! लोभ-मोह में लीन लोग
भूले हैं अपना अपरिणाम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

यह आर्द्र-शुष्क, यह उष्ण-शीत,
यह वर्त्तमान, यह तू व्यतीत!
तेरा भविष्य क्या मृत्यु-भीत?
पाया क्या तूने धूम-धाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

मैं सूँघ चुका वे फुल्ल फूल,
झड़ने को हैं सब झटित मूल।
चख देख चुका हूँ मैं, समूल—
सड़ने को हैं व अखिल आम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

सुन सुन कर, छू छू कर अशेष,
मैं निरख चुका हूँ निर्निमेष,
यदि राग नहीं, तो हाय! द्वेष,
चिर-निद्रा की सब धूम-धाम
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम

उन विषयों में परितृप्ति? हाय!
करते हैं हम उलटे उपाय।
खुजलाऊँ मैं क्या बैठ खाज?
हो जाय और भी प्रबल पाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

सब दे कर भी क्या आज दीन,
अपने या तेरे निकट हीन?
मैं हूँ अब अपने ही अधीन,
पर मेरा श्रम है अविश्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

इस मध्य निशा में ओ अभाग,
तुमको तेरे ही अर्थ त्याग,
जाता हूँ मैं यह वीतराग।
दयनीय, ठहर तू क्षीण-क्षाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

तू दे सकता था विपुल वित्त,
पर भूले उसमें भ्रान्त चित्त।
जाने दे चिर जीवन-निमित्त,
दूँ क्या मैं तुमको हाड़-चाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

रह काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,
लेता हूँ मैं कुछ और टोह।
कब तक देखूँ चुपचाप ओह!
आने जाने की धूम-धाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे ओक, न कर तू रोक-टोक,
पथ देख रहा है आर्त्त लोक,
मेटूँ मैं उसका दुख-शोक,
बस लक्ष्य यही मेरा ललाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

मैं त्रिविध-दुख-विनिवृत्ति-हेतु
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ-सेतु,
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

वह कर्म-काण्ड-ताण्डव-विकास,
वेदी पर हिंसा-हास-रास,
लोलुप-रसना का लोल-लास,
तुम देखो ऋग्, यजु और साम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

आ, मित्र-चक्षु के दृष्टि-लाभ,
ला, हृदय-विजय-रस-वृष्टि-लाभ।
पा, हे स्वराज्य, यह सृष्टि-लाभ
जा दण्ड-भेद, जा साम-दाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

तव जन्मभूमि, तेरा महत्त्व,
जब मैं ले आऊँ अमर-तत्त्व।
यदि पा न सके तू सत्य-सत्त्व,
तो सत्य कहाँ? भ्रम और भ्राम!
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे पूज्य पिता, माता, महान,
क्या माँगूँ तुम से क्षमा-दान?
क्रन्दन क्यों? गाओ मङ्गल-गान,
उत्सव हो पुर-पुर, ग्राम-ग्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे मेरे प्रतिभू, तात नन्द,
पाऊँ यदि मैं आनन्द-कन्द
तो क्यों न उसे लाऊँ अमन्द ?
तू तो है मेरे ठौर-ठाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

अयि गोपे, तेरी गोद पूर्ण,
तू हास-विलास-विनोद-पूर्ण !
अब गौतम भी हो मोद-पूर्ण,
क्या अपना विधि है आज वाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

क्या तुझे जगाऊँ एक बार ?
पर है अब भी अप्राप्त सार,
सो, अभी स्वप्न ही तू निहार,
हे शुभे, श्वेत के साथ श्याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

राहुल, मेरे ऋण-मोक्ष, सौंप !
लाऊँ मैं जब तक अमृत आप,
माँ ही तेरी माँ और बाप,
दुल, मातृ-हृदय के मृदुल दाम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

यह घन तम, सन सन पवन-जाल,
भन भन करता यह काल-व्याल,
मूर्च्छित विपाक्त वसुधा विशाल !
भय, कह, किस पर यह भूरि भाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

छन्दक, उठ, ला निज वाजिराज,
तज भय-विस्मय, सज शीघ्र साज।
सुन, मृत्यु-विजय-अभियान आज !
मेरा प्रभात यह रात्रि-याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !

वह जन्म-मरण का भ्रमण-भीण
मैं देख चुका हूँ अपरिमाण।
निर्वाण-हेतु मेरा प्रयाण,
क्या वात-वृष्टि, क्या शीत-घाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

हे राम, तुम्हारा वंशजात
सिद्धार्थ, तुम्हारी भाँति, तात,
घर छोड़ चला यह आज रात,
आशीष उसे दो, लो प्रणाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

३

आली, वही बात हुई, भय जिसका था मुझे,
मानती हूँ उनको गहन-वन-गामी मैं,
ध्यान-मग्न देख उन्हें एक दिन मैं ने कहा—
'क्यों जी, प्राणवल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं?'
चौंक, कुछ लज्जित-से, बोले हँस आर्यपुत्र—
'योगेश्वर क्यों न होऊँ, गोपेश्वर नामी मैं!
किन्तु चिन्ता छोड़ो, किसी अन्य का विचार करूँ
तो हूँ जार पीछे, प्रिये! पहले हूँ कामी मैं!'

४

कह आली, क्या फल है
अब तेरी उस अमूल्य सज्जा का?
मूल्य नहीं क्या कुछ भी
मेरी इस नग्न लज्जा का!

३

आली, वही बात हुई, भय जिसका था मुझे,
मानती हूँ उनको गहन-वन-गामी मैं,
ध्यान-मग्न देख उन्हें एक दिन मैं ने कहा—
'क्यों जी, प्राणवल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं ?'
चौंक, कुछ लज्जित-से, बोले हँस आर्यपुत्र—
'योगेश्वर क्यों न होऊँ, गोपेश्वर नामी मैं !
किन्तु चिन्ता छोड़ो, किसी अन्य का विचार करूँ
तो हूँ जार पीछे, प्रिये ! पहले हूँ कामी मैं !'

४

कह आली, क्या फल है
अब तेरी उस अमूल्य सज्जा का ?
मूल्य नहीं क्या कुछ भी
मेरी इस नग्न लज्जा का !

५

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।

सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैं ने मुख्य उसीको जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,—
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा,
रहें स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते!
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,—
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा,
रहें स्मरण ही आते!
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते!
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

६

प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।
तुम्हें हृदय में रख कर मैं ने अधर-कपाट लगाये।

मेरे हास-विलास ! किन्तु क्या भाग्य तुम्हें रख पाये ?
दृष्टि-मार्ग से निकल गये ये तुम रसमय मनभाये !
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।

यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कहीं भी छाये,
मेरे ये नि:श्वास व्यर्थ, यदि तुमको खींच न लाये।
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।

७

नाथ, तुम
जाओ, किन्तु लौट आओगे, आओगे, आओगे।
नाथ, तुम
हमें बिना अपराध अचानक छोड़ कहाँ जाओगे?
नाथ, तुम
अपनाकर सम्पूर्ण सृष्टि को मुझे न अपनाओगे?
नाथ, तुम
उसमें मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।

८

सास-ससुर पूछेंगे
तो उनसे क्या अभी कहूँगी मैं?
हा! गर्विता तुम्हारी
मौन रहूँगी, सहूँगी मैं।

६

प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।
तुम्हें हृदय में रख कर मैं ने अधर-कपाट लगाये।

मेरे हास-विलास ! किन्तु क्या भाग्य तुम्हें रख पाये ?
दृष्टि-मार्ग से निकल गये ये तुम रसमय मनभाये।
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।

यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कहीं भी छाये,
मेरे ये निःश्वास व्यर्थ, यदि तुमको खींच न लाये।
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये।

७

नाथ, तुम
जाओ, किन्तु लौट आओगे, आओगे, आओगे।
नाथ, तुम
हमें बिना अपराध अचानक छोड़ कहाँ जाओगे ?
नाथ, तुम
अपनाकर सम्पूर्ण सृष्टि को मुझे न अपनाओगे ?
नाथ, तुम
उसमें मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।

८

सास-ससुर पूछेंगे
तो उनसे क्या अभी कहूँगी मैं ?
हा ! गर्विता तुम्हारी
मौन रहूँगी, सहूँगी मैं।

नन्द

आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !
राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार !

छोड़ा मेरे लिए हाय ! क्या तुमने आज उदार ?
कैसे भार सहेगा सम्प्रति, राहुल है सुकुमार ?
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !

नन्द तुम्हारी छाती पर ही देगा सब कुछ वार,
किन्तु करोगे कब तक आ कर तुम उसका उद्धार ?
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !

महाप्रजावती

मै ने दूध पिला कर पाला।
सोती छोड गया पर मुझको वह मेरा मतवाला।

कहाँ न जाने वह भटकेगा,
किस झाडी में जा अटकेगा।
हाय ! उसे काँटा खटकेगा,
वह है भोला-भाला।
मैं ने दूध पिला कर पाला।

निकले भाग्य हमारे सूने,
वत्स, दे गया तू दुख दूने,
किया मुझे कैकेयी तूने,
हा कलंक यह काला !
मैं ने दूध पिला कर पाला।

कह, मैं कैसे इसे सहूँगी ?
मर कर भी क्या बची रहूँगी ?
जीजी से क्या हाय ! कहूँगी ?
जीते जी यह ज्वाला।
मैं ने दूध पिला कर पाला।

जरा आ गई यह क्षण भर में,
बैठी हूँ मैं आज डगर में !
लकड़ी तो ऐसे अवसर में!
देता जा, ओ लाला !
मैं ने दूध पिला कर पाला।

शुद्धोदन

१

मैं ने उसके अर्थ यह, रूपक रचा विशाल,
किन्तु भरी खाली गई, उलट गया वह ताल।

चला गया रे, चला गया!
छला न जाय हाय! यह, यह मैं
छला गया रे, छला गया!
चला गया रे, चला गया!

खींचा मैं ने गुण-सा तान,
निकल गया वह बाण-समान!
ममते, तेरा मान महान
दला गया रे, दला गया!
चला गया रे, चला गया!

स्वस्थ देह-सा था यह गेह,
गया प्राण-सा वह निस्स्नेह!
अश्रु! व्यर्थ है अब यह मेह,
जला गया रे, जला गया!
चला गया रे, चला गया!

उसे फूल-सा रक्खा पाल,
गया गन्ध-सा वह इस काल!
यह विष-फल, काँटे-सा साल,
फला गया रे, फला गया!
चला गया रे, चला गया!

धिक्! सब राज-पाट, धन-धाम,
धन्य उसीका लक्ष्य ललाम।
किन्तु कहूँ कैसे हे राम!
भला गया रे, भला गया!
चला गया रे, चला गया!

२

शुद्धोदन—

धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ ?
तू ही बता, उसके लिए मैं आज क्या करूँ ?

यशोधरा—

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
सिद्धि-लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से

शुद्धोदन—

तू क्या कहती है बहू, पाऊँ मैं जहाँ कहीं,
चतुर चरों को भेज खोजूँ भी उसे नहीं ?

यशोधरा—

तात, नहीं !

शुद्धोदन—

कैसी बात ? बेटी, यह भूल है।

यशोधरा—

किन्तु खोज करना उन्हींके प्रतिकूल है।

शुद्धोदन—

कैसे ?

यशोधरा—

तात, सोचो, क्या गये वे इसी अर्थ हैं
खोज हम लावें उन्हें, क्या वे असमर्थ हैं ?

शुद्धोदन—

बेटी, वह प्रौढ़ है क्या ? वत्स भोला-भाला है।

यशोधरा—

पा लिया उन्होंने किन्तु ज्ञान का उजाला है !

शुद्धोदन—

गोपे, यह गर्व और मान क्या उचित है ?

यशोधरा—

जो मैं कहती हूँ तात, हाय ! वही हित है।

शुद्धोदन—

जान पड़ती तू आज मुझको कठोर है।

यशोधरा—

धर्म लिये जाता मुझे आज उसी ओर है।

शुद्धोदन—

तू है सती, मान्य रहे इच्छा तुझे पति की,
मैं हूँ पिता, चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की।
भूला वह भोला, उठा रक्खूँ क्या उपाय मैं?

यशोधरा—

उनसे भी भोला तुम्हें देखती हूँ हाय मैं!

पुरजन

१

भाई रे ! हम प्रजाजनों का हाय ! भाग्य ही खोटा !
दिखा दिखा कर लाभ अन्त में आ पड़ता है टोटा !

रोते रहे सभी पुर-परिजन,
राज्य छोड़ कर राम गये वन,
पड़ा रहा वह धाम-धरा-धन,
खड़ा रहा परकोटा !
भाई रे ! हम प्रजाजनों का हाय ! भाग्य ही खोटा !

गये आज सिद्धार्थ हमारे,
जो थे इन प्राणों के प्यारे,
भार मात्र कोई अब धारे,
राज्य धूल में लोटा!
भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा!

हम हों कितने ही अनुरागी,
हुए आज वे सब कुछ त्यागी,
कैसे उस विभूति का भागी
होता यह घर छोटा?
भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा!

२

लो, यह छन्दक आया,
पर वह कन्थक शून्यपृष्ठ क्यों आया?
हे भगवान! न जानें,
कौन समाचार यह लाया!

छन्दक

१

कहूँ और क्या भाई!
आना पड़ा मुझे, मैं आया, मुझको मृत्यु न आई!

मारो तुम्हीं मुझे, मर जाऊँ सुख से राम-दुहाई,
झूठ कहूँ तो सुगति न देवे मुझको, गंगा माई।

जोग-भ्रष्ट थे आर्य, उसीकी धुन थी उन्हें समाई,
राज्य छोड़ सन्यास ले गये, रज ही हाय रमाई!

सोने का सुमेरु भी उनके निकट हुआ था राई,
अन्न, वस्त्र-भूषण क्या, उनको नहीं शिखा भी भाई!

८

हाय ! काट डाले वे केश !
चिकने-चुपड़े, कोमल-कच्चे, सच्चे सुरभि-निवेश ।

शोभित ही रहता है शोभन, रख ले कोई वेश ,
दिया समान उन्होंने सबको आशा का सन्देश ।

“करे न कोई मेरी चिन्ता, नहीं मुझे भय-लेश ,
सिद्धि-लाभ करके मैं फिर भी लौटूँगा निज देश ।

सह सकता मैं नहीं किसीका जन्म जन्म का क्लेश ,
तुम अपने हो, जीव मात्र का हित मेरा उद्देश ।”

यशोधरा

१

जाओ, मेरे सिर के बाल !
आलि, कत्तरी ला, मैं ने क्या पाले काले व्याल ?

उलझें यहाँ न ये आपस में सुलझें वे व्रत-पाल।
डँसें न हाय ! मुझे एड़ी तक विस्तृत ये विकराल।

कसें न और मुझे अब आकर हेमहीर, मणिमाल,
चार चूड़ियाँ ही हाथों में पड़ी रहें चिरकाल।

मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल-सा लाल !
क्या है अजन-अगराग, जब मिली विभूति विशाल ?

बस, सिन्दूर-बिन्दु से मेरा जगा रहै यह भाल,
यह जलता अगार जला दे उनका सब जजाल।

२

आज नया उत्सव है,
    धन्य अहा! इस उमङ्ग का क्या कहना?
सूनी अँखियों ने भी
    निरख सखी, क्या अपूर्व गहना पहना!

३

✓ वर्त्तमान मेरा अहा! है अतीत का ध्यान,
किन्तु हाय! इस ज्ञान से अच्छा था अज्ञान!

४

यह जीवन भी यशोधरा का अंग हुआ,
हाय! मरण भी आज न मेरे संग हुआ!
सखि, वह था क्या सभी स्वप्न, जो भंग हुआ?
मेरा रस क्या हुआ और क्या रंग हुआ?

५

मिला न हा ! इतना भी योग,
मैं हँस लेती तुझे वियोग !

देती उन्हें विदा मैं गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह निःश्वास न उठता हा कर,
बनता मेरा राग न रोग,
मिला न हा ! इतना भी योग।
पर वैसा कैसे होना था?
वह मुक्ताओं का बोना था।
लिखा भाग्य में तो रोना था—
यह मेरे कर्मों का भोग !
मिला न हा ! इतना भी योग।
पहुँचाती मैं उन्हें सजा कर,
गये स्वयं वे मुझे लजा कर।
लूँगी कैसे ?—वाद्य बजा कर
लेंगे जय उनको सब लोग।
मिला न हा ! इतना भी योग।

६

दूँ किस मुँह से तुम्हें उलहना ?
नाथ, मुझे इतना ही कहना ।

हाय ! स्वार्थिनी थी मैं ऐसी, रोक तुम्हें रख लेती ?
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती ?
आश्रय होता था वह बहना ?
नाथ, मुझे इतना ही कहना ।

विदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है,
हन्त ! अन्त में यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है ।
जैसे रक्खो, वैसे रहना !
नाथ, मुझे इतना ही कहना ।

ले न सकेगी तुम्हें वही यह तुम सब कुछ हो जिसके,
यह लज्जा, यह क्षोभ भाग्य में लिखा गया कब, किसके ?
मैं अधीन, मुझको सब सहना ।
नाथ, मुझे इतना ही कहना ।

७

अब कठोर हो वज्रादपि ओ कुसुमादपि सुकुमारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मेरे लिए पिता ने सबसे धीर-वीर वर चाहा,
आर्यपुत्र को देख उन्होंने सभी प्रकार सराहा।
फिर भी हठ कर हाय ! वृथा ही उन्हें उन्होंने थाहा,
किस योद्धा ने बढ़ कर उनका शौर्य-सिन्धु अवगाहा ?
क्यों कर सिद्ध करूँ अपने को मैं उन नर की नारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

देख कराल काल-सा जिसको काँप उठे सब भय से,
गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन, नागदत्त जिस हय से,
वह तुरंग पालित कुरंग-सा नत हो गया विनय से,
क्यों न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से ?
निकला यहाँ कौन उन जैसा प्रबल-पराक्रमकारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

सभी सुन्दरी बालाओं में मुझे उन्होंने माना,
सब ने मेरा भाग्य सराहा, सब ने रूप बखाना,
खेद, किसी ने उन्हें न फिर भी ठीक ठीक पहचाना,
भेद चुने जाने का अपने मैं ने भी अब जाना।
इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी सारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मेरे रूप-रंग, यदि तुझको अपना गर्व रहा है,
तो उसके झूठे गौरव का तू ने भार सहा है।
तू परिवर्तनशील, उन्होंने कितनी बार कहा है—
'फूला दिन किस अन्धकार में डूबा और बहा है'?'
किन्तु अन्तरात्मा भी मेरा था क्या विकृत-विकारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

मैं अबला! पर वे तो विश्रुत वीर-बली थे मेरे,
मैं इन्द्रियासक्ति! पर वे कब थे विषयों के चेरे?
अयि मेरे अर्द्धांगि-भाव, क्या विषय मात्र थे तेरे?
हा! अपने अंचल में किसने ये अंगार बिखेरे?
है नारीत्व मुक्ति में भी तो ओ वैराग्य-विहारी!
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

सिद्धि-मार्गकी बाधा नारी ! फिर उसकी क्या गति है ?
पर उनसे पूछूँ क्या, जिनको मुझ से आज विरक्ति है !
अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है !
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु-पति है !
यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

यशोधरा के भूरि भाग्य पर ईर्ष्या करने वाली ,
तरस न खाओ कोई उस पर, आओ भोली-भाली !
तुम्हें न सहना पड़ा दु:ख यह, मुझे यही सुख आली !
वधू-वंश की लाज दैव ने आज मुझी पर डाली ।
बस, जातीय सहानुभूति ही मुझ पर रहे तुम्हारी ।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

जाओ नाथ ! अमृत लाओ तुम, मुझ में मेरा पानी ,
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी ।
प्रिय तुम तपो, सहूँ मैं भरसक, देखूँ बस हे दानी—
कहाँ तुम्हारी गुण-गाथा में मेरी करुण-कहानी ?
तुम्हें अप्सरा-विघ्न न व्यापे यशोधराकरधारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

८

सखि, प्रियतम हैं वन में ?
किन्तु कौन इस मन में ?

दिव्य-मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ,
प्रलय ! पिघल कर प्रिय न जो प्राणों में ढल जायँ,
जैसे गन्ध पवन में !
सखि, प्रियतम हैं वन में ?

नयन, वृथा व्याकुल न हो, नई नहीं यह रीति,
रखते हो तुम प्रीति तो धारण करो प्रतीति।
यही यथा वल जन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में ?

भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ है अब भी यह अभिमान।
मैं निज राज-भवन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैं ने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन, निश्चय मेरे राम।
यहीं, इसी आँगन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

६

मरण सुन्दर बन आया री !
शरण मेरे मन भाया री !

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार,
रहा कराल कठोर काल सो हुआ सदय सुकुमार।
नर्म सहचर-सा छाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

अपने हाथों किया विरह ने उसका सब शृंगार,
पहना दिया उसे उसने मृदु मानस-मुक्ता-हार।
विरुद विहगों ने गाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

फूलों पर पद रख, कूलों पर रच लहरों से रास,
मन्द पवन के स्यन्दन पर चढ़ वह आया सविलास।
भाग्य ने अवसर पाया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

फिर भी गोपा के कपाल में कहाँ आज यह भोग?
प्रियतम का क्या, यम का भी है दुर्लभ उसे सुयोग!
बनी जननी भी जाया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।
जिये जल जल कर काया री!
मरण सुन्दर बन आया री!

१०

जलने को ही स्नेह बना।
उठने को ही वाष्प बना है,
गिरने को ही मेह बना।

जलता स्नेह जलावेगा ही,
फोले वाष्प फलावेगा ही,
मिट्टी मेह गलावेगा ही,
सब सहने को देह बना।
जलने को ही स्नेह बना।

यही भला—आँसू बह जावें,
रक्त-बिन्दु वह किसको भावें ?
मैं उठ जाऊँ, सखि, वे आवें,
बसने को ही गेह बना,
जलने को ही स्नेह बना।

११

सखि, वसन्त-से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय! विभूति रमाने का भी मैं ने योग न पाया।
सूखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया।
मेरा ताप और तप उनका,
जलती है हा! जठर मही,
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

जागी किसकी वाष्पराशि, जो सूने में सोती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी ?
अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी।
किसके भरे हृदय की धारा,
शतधा हो कर आज बही ?
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा व्यथा सही।

उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल थल में,
नाच उठी आशा प्रति दल पर किरणों की झल झल में,
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल कल में।
पर मेरे मध्यान्ह ! बता क्यों
तेरी मूर्च्छा बनी वही ?
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

हेमपुञ्ज हेमन्तकाल के इस आतप पर वारूँ,
प्रियस्पर्श की पुलकावलि मैं कैसे आज बिसारूँ?
किन्तु शिशिर, ये ठंडी साँसें हाय! कहाँ तक धारूँ?
तन जारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ?
मेरी बाँह गही स्वामी ने,
मैं ने उनकी छाँह गही,
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देख कर त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड-से घर घर में हैं जागे,
मेरे कम्प, हाय! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।
पानी जमा, परन्तु न मेरे
खट्टे दिन का दूध-दही,
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तन्तु कब टूटे ?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे !
स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।
उनके श्रम के फल सब भोगें,
यशोधरा की विनय यही,
मैं ने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

१२

कूक उठी है कोयल काली।
ओ मेरे वनमाली!

चक्कर काट रही है रह रह, सुरभि मुग्ध मतवाली,
अम्बर ने गहरी छानी यह, भू पर दुगनी ढाली!
ओ मेरे वनमाली!

समय स्वय यह सजा रहा है डगर डगर में डाली,
मृदु समीर-सह बजा रहा है नीर तीर पर ताली।
ओ मेरे वनमाली!

लता कण्टकित हुई ध्यान से ले कपोत की लाली,
फूल उठी है हाय! मान से प्राण भरी हरियाली।
ओ मेरे वनमाली!

छलक न जाय अर्घ्य आँखों का, गिर न जाय यह थाली,
उड़ न जाय पक्षी पाँखों का, आओ हे गुणशाली!
ओ मेरे वनमाली!

१३

उनका यह कुंज-कुटीर वही
झड़ता उड़ अंशु-अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं
सुन चातक की रट "पीव कहाँ?"
अब भी सब साज समाज वही
तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि, जा पहुँचे सुध-संग कहाँ
यह अन्ध सुगन्ध समीर वहाँ!

१४

दरक कर दिखा गया निज सार जो,
हँस दाड़िम, तू खिल खेल,
प्रकट कर सका न अपना प्यार जो,
रो कठिन हृदय, सब झेल।

१५

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, बलि जाऊँ इस रट की।
मेरे रोम रोम में आ कर यह काँटे-सी खटकी।
भटकी हाय कहाँ घन की सुध, तू आशा पर अटकी,
मुझसे पहले तू सनाथ हो, यही विनय इस घट की।

१६

फलों के बीज फलों में फिर आये,
मेरे दिन फिरे न हाय!
गये घन कै कै बार न घिर आये?
वे निर्झर फिरे न हाय!

१७

मैं भी थी सखि, अपने
मानस की राजहंसनी रानी,
सपने की-सी बातें!
प्रिय के तप ने सुखा दिया पानी।

राहुल-जननी

१

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !
रोता है, अब किसके आगे ?

तुझे देख पाते वे रोता,
मुझे छोड़ जाते क्यों सोता ?
अब क्या होगा ? तब कुछ होता,
सोकर हम खोकर ही जागे !
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !

बेटा, मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को,
हँस तू है सब कुछ होने को,
भाग्य आयँगे फिर भी भागे,
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे।

तुझको क्षीर पिला कर लूँगी,
नयन-नीर ही उनको दूँगी,
पर क्या पक्षपातिनी हूँगी ?
मैं ने अपने सब रस त्यागे।
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे।

२

चेरी भी वह आज कहाँ, कल थी जो रानी,
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी ?
अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी !
मेरा शिशु-संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम
प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो।

३

यह छोटा-सा छौना !
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर-सलौना !
क्यों न हँसूँ-रोऊँ-गाऊँ मैं, लगा मुझे यह टौना,
आर्यपुत्र, आओ, सचमुच मैं दूँगी चन्द-खिलौना !

जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!
कठिन पन्थ, दूर पार, और यह अँधेरी!

सजनी, उलटी बयार,
वेग धरे प्रखर धार,
पद पद पर विपद-वार,
रजनी घन-घेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!

जाना होगा परन्तु,
खींच रहा कौन तन्तु?
गरज रहे घोर जन्तु,
बजती भय-भेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!

समय हो रहा सयत्न,
अपने वश कौन यत्न?
गाँठ में अमूल्य रत्न,
बिसरी सुध मेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!

भव का यह विभव साथ,
थाती भर किन्तु हाथ।
ले ले कर लौट! नाथ?
सौंप बचे चेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!

इस निधि के योग्य पात्र
यदि था यह तुच्छ गात्र,
तो वही प्रतीति मात्र
दैव, दया तेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी!

५

दैव बनाये रक्खे
राहुल, बेटा, विचित्र तेरी क्रीडा,
तनिक बहल जाती है
उसमें मेरी अधीर पीडा-व्रीडा।

६

किलक अरे, मैं नेक निहारूँ,
इन दाँतों पर मोती वारूँ!

पानी भर आया फूलों के मुहँ में आज सवेरे,
हाँ, गोपा का दूध जमा है राहुल ! मुख में तेरे।
लटपट चरण, चाल अटपट-सी मनभाई है मेरे,
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ।

आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों 'अम्ब अम्ब' कहता है?
'पिता, पिता' कह, बेटा, जिनसे घर सूना रहता है!
दहता भी है, बहता भी है, यह जी सब सहता है।
फिर भी तू पुकार, किस मुँह से हा ! मैं उन्हें पुकारूँ?
इन दाँतों पर मोती वारूँ।

७

आली, चक्र कहाँ चलता है ?
सुना गया भूतल ही चलता, भानु अचल जलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है ?

कटते हैं हम आप घूम कर, निर्वश-निर्बलता है,
दिनकर-दीप द्वीप-शलभों को पल पल में छलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है ?

कुशल यही, वह दिन भी कटता जो हमको खलता है,
साधक भी इस बीच सिद्धि को ले कर ही टलता है।
आली, चक्र कहाँ चलता है ?

गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है,
अश्रु-सिक्त आशा का अंकुर देखूँ कब फलता है ?
आली, चक्र कहाँ चलता है ?

८

"ओ माँ, आँगन में फिरता था
कोई मेरे संग लगा,
आया ज्यों ही मैं अलिन्द में
छिपा, न जाने कहाँ भगा!"

"बेटा, भीत न होना, वह था
तेरा ही प्रतिबिम्ब जगा।"
"अम्ब, भीति क्या?" "मृषा भ्रान्ति वह,
रह तू रह तू गीति-पगा।"

९

ठहर, बाल-गोपाल कन्हैया।
राहुल, राजा भैया!

कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको हार गई मैं दैया,
सद्य दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध-फेन-सी शय्या।

तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भँवर में नैया,
आ मेरी गोदी में आ जा, मैं हूँ दुखिया मैया।

"मैया है तू अथवा मेरी दो थन वाली गैया?
रोने से यह रिस ही अच्छी, तिली लिली ता थैया!"

१०

"तब कहता था—'लोभ न दे' अब
चन्द-खिलौने की रट क्यों ?"
"तब कहती थी—'दूँगी बेटा !'
माँ, अब इतनी खटपट क्यों ?"

"कह तो झूठ-मूठ बहला दूँ ? पर वह होगी छाया,
मुझको भी शैशव में शशि की थी ऐसी ही माया।
किन्तु प्रसू बन कर अब मैं ने उसको तुममें पाया,
पिता बनेगा, तभी पायगा तू वह धन मनभाया।"

"अम्ब, पुत्र ही अच्छा यह मैं,
झेलूँ इतनी झंझट क्यों ?"
"पुत्र हुआ, तो पिता न होगा ?
यह विरक्ति ओ नटखट क्यों ?"

११

"अम्ब, यह पक्षी कौन, बोलता है मीठा बड़ा,
जिसके प्रवाह में तू डूबती है बहती।"
"बेटा, यह चातक है।" "माँ, क्या कहता है यह ?"
"पी-पी, किन्तु दूध की तुझे क्या सुध रहती ?"
"और यह पक्षी कौन बोला वाह!" "कोयल है"
"माँ, क्यों इस कूक की तू हूक-सी है सहती ?
कहती उमङ्ग से है मेरे सग सग अहो!
'कहो-कहो' किन्तु तू कहानी नहीं कहती!"

१२

“नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो चाहे पानी !”
“नहीं पियेगा बेटा, यदि तू तो सुन चुका कहानी।”
“तू न कहेगी तो कह लूँगा मैं अपनी मनमानी,
सुन, राजा वन में रहता था, घर सहती थी रानी !”
“और, हठी बेटा रटता था—नानी-नानी-नानी !”
“बात काटती है तू? अच्छा, जाता हूँ मैं मानी !”
“नहीं नहीं, बेटा, आ, तू ने यह अच्छी हठ ठानी,
सुन कर ही पीना, सोना मत, नई कहूँ कि पुरानी?”

१३

"व्यर्थ गल गया मेरा—
रसाल, मैं ने स्वय नहीं चक्खा था,
माँ, देख, छाँट कर सौ में
इसे पिता के लिए बचा रक्खा था!"

"जड आम भले सड जावे,
पर चेतन भावना तभी वह तेरी
अर्पित हुई उन्हें है,
वत्स, यही मति तथा यही गति मेरी।"

१४

"निष्फल दो दो वार गई,
हार गई माँ, हार गई।

आगे आगे अम्ब जहाँ,
मैं पीछे चुपचाप वहाँ।
खोज फिरी तू कहाँ कहाँ,
फिर कर क्यों न निहार गई?
हार गई माँ, हार गई।

यहाँ, पिता की मूर्ति यही—
मेरे-तेरे बीच रही।
तू इसको ही देख यही,
सुध ही शोध बिसार गई!
हार गई माँ, हार गई!

अब की तू छिप देख कहीं,
पर लेना निःश्वास नहीं,
पकड़ा दे जो तुझे वहीं।"
"बेटा, मैं यह बार गई,
हार गई हाँ, हार गई।"

१५

"अम्ब, तात कब आयेंगे ?"
"धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायेंगे।

मुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यों न अपनायेंगे,
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।"

"माँ, तब पिता-पुत्र हम दोनो संग संग फिर जायेंगे,
देना तू पाथेय, प्रेम से चिचर चिचर कर खायेंगे।

पर अपने दूने सूने दिन तुझको कैसे भायेंगे ?"
"हा राहुल ! क्या वैसे दिन भी इस धरती पर धायेंगे ?

देखूँगी बेटा, मैं, जो भी भाग्य मुझे दिखलायेंगे,
तो भी तेरे सुख के ऊपर मेरे दुःख न छायेंगे।"

१६

राहुल
अम्ब, मेरी बात कैसे तुम तक जाती है ?
यशोधरा
बेटा, वह वायु पर बैठ उड़ आती है।
राहुल
होंगे जहाँ तात क्या न होगा वायु माँ, वहाँ ?
यशोधरा
बेटा, जगत्प्राण वायु, व्यापक नहीं कहाँ ?
राहुल
क्यों अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं ?
यशोधरा
निज ध्वनि फैल कर लीन होती है यहीं।

राहुल

और उनकी भी वहाँ ? फिर क्या बड़ाई है ?

यशोधरा

सबने शरीर-शक्ति मित की ही पाई है।
मन ही के माप से मनुष्य बड़ा-छोटा है,
और अनुपात में उसीके खरा-खोटा है।
साधन के कारण ही तन की महत्ता है,
किन्तु शुद्ध मन की निरुद्ध कहाँ सत्ता है ?
करते हैं साधन विजन में वे तन से,
किन्तु सिद्धि-लाभ होगा मन से, मनन से।
देख, निज नेत्र-कर्ण जा पाते नहीं वहाँ,
सूक्ष्म मन किन्तु दौड़ जाता है कहाँ कहाँ ?
वत्स, यही मन जब निश्चलता पाता है
आ कर इसीमें सब सत्य समा जाता है।

राहुल

तो मन ही मुख्य है माँ ?

यशोधरा

बेटा, स्वस्थ देह भी,
योग्य अधिवासी के लिए हो योग्य गेह भी।

राहुल

विहग-समान यदि अम्ब, पंख पाता मैं
एक ही उड़ान में तो ऊँचा चढ़ जाता मैं।
मंडल बना कर मैं घूमता गगन में,
और देख लेता पिता बैठे किस वन में।
कहता मैं–तात, उठो, घर चलो, अब तो,
चौंक कर अम्ब, मुझे देखते वे तब तो।
कहते–"तू कौन है ?" तो नाम बतलाता मैं,
और सीधा मार्ग दिखा शीघ्र उन्हें लाता मैं।
मेरी बात मानते हैं मान्य पितामह भी,
मानते अवश्य उसे टालते न वह भी।
किन्तु बिना पंखों के विचार सब रीते हैं
हाय ! पक्षियों से भी मनुष्य गये-बीते हैं।
हम थलवासी जल में तो तैर जाते हैं
किन्तु पक्षियों की भाँति उड़ नहीं पाते हैं।

मानवों को पंख क्यों विधाता ने नहीं दिये ?

यशोधरा

परों के बिना ही उड़ें चाहें तो, इसी लिए।

राहुल

पंखों के बिना ही अम्ब ?

यशोधरा

और नहीं ?

राहुल

कैसे माँ ?

यशोधरा

भूल गया ?

राहुल

ओहो! हनूमान उड़े जैसे माँ!

क्योंकर उड़े वे भला ?

यशोधरा

बेटा, योग-बल से।

राहुल

मैं भी योग-साधन करूँगा अम्ब, कल से।

१८

राहुल

तेरा मुहँ पहले बड़ा था ? अम्ब, कह तू ।

यशोधरा

राहुल, क्या पूछता है, बेटा, भला यह तू ?

राहुल

"रह गया तेरा मुँह छोटा" यही कह के ,
दादीजी अभी तो अम्ब, रोईं रह रह के ।

यशोधरा

राहुल, तू कहता है—"खा चुका हूँ इतना !"
किन्तु मुझे लगता है, खाया अभी कितना !
बेटा, यही बात मेरी और दादीजी की है
होती परितृप्ति कभी जननी के जी की है ?

राहुल

रोई किन्तु क्यों वे अम्ब,

यशोधरा

उनके वियोग से,
वञ्चित हूँ जिनके बिना मैं राज-भोग से।

राहुल

माँ, वही तो! छोटा मुहँ कहने को तेरा है
दैन्य और दर्प जहाँ दोनों का बसेरा है।
चाहे मुहँ छोटा रहे, किन्तु बड़ा मोला है,
छोटी और खोटी बात वह कब बोला है।
और तेरी आँखें तो बड़ी हैं अम्ब, तब भी?

यशोधरा

बेटा, तुझे देख परिपूर्ण हैं वे अब भी।

राहुल

अम्ब, जब तात यहाँ लौट कर आयेंगे,
और वे भी तेरा मुहँ छोटा बतलायेंगे,
तो मैं, सुन, उनसे कहूँगा बस इतना—
मुहँ जितना हो किन्तु मानी मन कितना?

१६

"माँ, कह एक कहानी।"
"बेटा, समझ लिया क्या तू ने
मुझको अपनी नानी ?"
"कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी।
कह माँ, कह, लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी ?
राजा था या रानी ?
माँ, कह एक कहानी।"

"तू है हठी मानधन मेरे,
सुन, उपवन में बड़े सवेरे,
घूम रहे थे पितृपद तेरे,
जहाँ सुरभि मनमानी।"
"जहाँ सुरभि मनमानी ?
हाँ, माँ, यही कहानी।"

"वर्ण वर्ण के फूल खिले थे,
झलमल कर हिम-बिन्दु झिले थे,
हलके झोंके हिले-मिले थे,
लहराता था पानी।"
"लहराता था पानी ?
हाँ, हाँ, यही कहानी।"

"गाते थे खग कल कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से
गिरा, विद्ध होकर खर-शर से,
हुई पक्ष की हानी।"
"हुई पक्ष की हानी ?
करुणा-भरी कहानी।"

"चौंक उन्होंने उसे उठाया,
नया जन्म-सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया,
लक्ष्य-सिद्धि का मानी।"
"लक्ष्य-सिद्धि का मानी?
कोमल-कठिन कहानी।"

"माँगा उसने आहत पक्षी,
तेरे तात किन्तु थे रक्षी।
तब उसने, जो था खगभक्षी—
हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी?
अब बढ़ चली कहानी।"

"हुआ विवाद सदय-निर्दय में,
उभय आग्रही थे स्वविषय में।
गई बात तब न्यायालय में,
सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी?
व्यापक हुई कहानी।"

"राहुल, तू निर्णय कर इसका—
न्याय पक्ष लेता है किसका ?
कह दे निर्भय, जय हो जिसका ।
सुन लूँ तेरी बानी ।"
"माँ, मेरी क्या बानी ?
मैं सुन रहा कहानी ।

कोई निरपराध को मारे
तो क्यों अन्य उसे न उबारे ?
रक्षक पर भक्षक को वारे,
न्याय दया का दानी ।"
"न्याय दया का दानी ?
तूने गुनी कहानी ।"

२०

सो, अपने चचलपन, सो !
सो, मेरे अचल-धन, सो !

पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुजन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृह-गुजन, सो !
सो, मेरे अंचल-धन, सो !

तनिक पार्श्व-परिवर्त्तन कर ले,
उस नासा-पुट को भी भर ले।
उभय पक्ष का मन तू हर ले,
मेरे व्यथा-विनोदन, सो!
सो, मेरे अचल-धन, सो!

रहे मन्द ही दीपक-माला,
तुझे कौन भय-कष्ट-कसाला?
जाग रही है मेरी ज्वाला,
सो, मेरे आश्वासन, सो!
सो, मेरे अचल-धन, सो!

ऊपर तारे झलक रहे हैं,
गोखों से लग ललक रहे हैं,
नीचे मोती ढलक रहे हैं,
मेरे अपलक दर्शन, सो!
सो, मेरे अचल-धन, सो!

तेरी साँसों का निस्पन्दन,
मेरे तप्त हृदय का चन्दन।
सो, मैं कर लूँ जी भर क्रन्दन!
सो, उनके कुल-नन्दन, सो!
सो, मेरे अंचल-धन, सो!

खेले मन्द पवन अलकों से,
पोछूँ मैं उनको पलकों से।
छद-रद की छवि की छलकों से
पुलक-पूर्ण शिशु-यौवन सो!
सो, मेरे अचल-धन, सो!

२१

निशि की अँधेरी जवनिके, चुप चेतना जब सो रही,
नेपथ्य में तेरे, न जाने, कौन सज्जा हो रही।

मेरी नियति नक्षत्र-मय ये बीज अब भी बो रही,
मैं भार फल की भावना का व्यर्थ ही क्यों ढो रही?

भर हर्ष में भी, शोक में भी अश्रु, संसृति रो रही,
सुख-दुःख दोनों दृष्टियों से सृष्टि सुधबुध खो रही!

मैं जागती हूँ और अपनी दृष्टि अब भी धो रही,
वेला गई सो तो गई, बेला रहे वह जो रही।

२२

उलट पड़ा यह दिव-रत्नाकर
पानी नीचे ढलक रहा,
तारक-रत्नहार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा।

"निर्दय है या सदय हृदय वह ?"
मैं ने उससे ललक कहा।
हँस बोला—"ग्रह-चक्र देख लो !"
पर न उठे ये पलक हहा!

२३

पवन, तू शीतल-मन्द-सुगन्ध ।
इधर किधर आ भटक रहा है ? उधर उधर, ओ अन्ध !
तेरा भार सहें न सहें ये यशोधरा के स्कन्ध ,
किन्तु बिगाड़ न दें ये साँसें तेरा बना प्रबन्ध !

२४

मेरे फूल, रहो तुम फूले ।
तुम्हें झुलाता रहे समीरण झोंटे देकर भूले ।
तुम उदार दानी हो, घर की दशा सहज ही भूले ,
क्षमा, कभी यह उष्णपाणि भी मूल तुम्हें यदि छूले ।

२५

प्रकट कर गई धन्य रस-राग तू ,
पौ, फट कर भी निरुपाय ।
भरे है भीतर अपने आग तू !
री छाती, फटी न हाय !

२६

यह प्रभात या रात है घोर तिमिर के साथ,
नाथ, कहाँ हो हाय तुम ? मैं अदृष्ट के हाथ !

जहाँ सुधानिधि को भी छोड़ा,
काल-करों ने घर अम्बर में सारा सार निचोड़ा !

टपक पड़ा कुछ इधर उधर जो अमृत वहाँ से थोड़ा,
तृण-फूल-पत्तों ने पुट में बूँद बूँद कर जोड़ा।

मेरे जीवन के रस, तू ने यदि मुझ से मुँह मोड़ा,
तो कह, किस तृष्णा के माथे यह अपना घट फोड़ा ?

मेरी नयन-मालिके ! माना, तू ने बन्धन तोड़ा,
पर तेरा मोती न बनें हा ! प्रिय के पथ का रोड़ा।

२७

अब क्या रक्खा है रोने में ?
इन्दुकले, दिन काट शून्य के किसी एक कोने में।

तेरा चन्द्रहार वह टूटा,
किसने हाय, भरा घर लूटा ?
अर्णव-सा दर्पण भी छूटा,
सोना ही सोने में !
अब क्या रक्खा है रोने में ?

सृष्टि किन्तु सोते से जागी ,
तपें तपस्वी, रत हों रागी ,
सभी लोक-संग्रह के भागी ,
उगना भी बोने में।
अब क्या रक्खा है रोने में?

बेला फिर भी तुझे भरेगी ,
संचय करके व्यय न करेगी?
अमृत पिये है तू न मरेगी ,
सब होगा होने में।
अब क्या रक्खा है रोने में?

सफल अस्त भी तेरा आली ,
घिरे बीच में यदि न घनाली।
जागे एक नई ही लाली—
तपे खरे सोने में।
अब क्या रक्खा है रोने में?

२८

घुसा तिमिर अलकों में भाग,
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

जागा नूतन गन्ध पवन में,
उठ तू अपने राज-भवन में,
जाग उठे खग घन-उपवन में,
और खगों में कलरव-राग।
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

तात! रात बीती वह काली,
उजियाली ले आई लाली,
लदी मोतियों से हरियाली,
ले लीलाशाली, निज भाग।
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

किरणों ने कर दिया सवेरा,
हिमकण-दर्पण में मुख हेरा,
मेरा मुकुर मंजु मुख तेरा,
उठ, पंकज पर पड़े पराग!
जाग, दुःखिनी के सुख जाग!

तेरे वैतालिक गाते हैं,
स्वस्ति लिए ब्राह्मण आते हैं,
गोप दुग्ध-भाजन लाते हैं,
ऊपर झलक रहा है झाग
जाग, दुःखिनी के सुख, जाग!

मेरे बेटा, भैया, राजा,
उठ, मेरी गोदी में आ जा,
भौंरा नचे, बजे हाँ, बाजा,
सजे श्याम हय, या सित नाग!
जाग, दु:खिनी के सुख, जाग

जाग अरे, निस्पृत भव, मेरे!
आ तू, भ्रम्य उपद्रव, मेरे!
उठ, उठ, सोये शैशव मेरे!
जाग स्वप्न, उठ, तन्द्रा त्याग!
जाग, दु:खिनी के सुख, जाग!

तात ! रात बीती वह काली ,
उजियाली ले आई लाली ,
लदी मोतियों से हरियाली ,
ले लीलाशाली, निज भाग।
जाग, दु खिनी के सुख, जाग !

किरणों ने कर दिया सबेरा ,
हिमकण-दर्पण में मुख हेरा ,
मेरा मुकुर मंजु मुख तेरा ,
उठ, पंकज पर पड़े पराग !
जाग, दु खिनी के सुख जाग !

तेरे वैतालिक गाते हैं ,
स्वस्ति लिए ब्राह्मण आते हैं ,
गोप दुग्ध-भाजन लाते हैं ,
ऊपर झलक रहा है झाग।
जाग, दु खिनी के सुख, जाग !

मेरे बेटा, भैया, राजा,
उठ, मेरी गोदी में आ जा,
भौंरा नचे, बजे हाँ, बाजा,
सजे श्याम हय, या सित नाग?
जाग, दु खिनी के सुख, जाग!

जाग अरे, विस्मृत भव, मेरे!
आ तू, क्षुम्य उपद्रव, मेरे!
उठ, उठ, सोये शैशव मेरे!
जाग स्वप्न, उठ, तन्द्रा त्याग!
जाग, दु खिनी के सुख, जाग!

३१

कैसी डीठ? कहाँ का टौना?
मान लिया आँखों में अंजन, माँ, किस लिए डिठौना?

यही डीठ लगने के लच्छिन—छूटे खाना-पीना,
कभी काँपना, कभी पसीना, जैसे तैसे जीना?
डीठ लगी तब स्वयं तुझे ही, तू है सुध-बुध-हीना,
तू ही लगा डिठौना, जिसको काँटा बना बिछौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

लोहित-विन्दु भाल पर तेरे, मैं काला क्यों दूँ माँ?
लेती है जो वर्ण आप तू, क्यों न वही मैं लूँ माँ?
एक इसी अन्तर के मारे मैं अति अस्थिर हूँ माँ।
मेरा चुंबन तुझे मधुर क्यों? तेरा मुझे सलोना
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

रह जाते हैं स्वयं चकित-से मुझे देख सब कोई,
लग सकती है यह, माँ, मुझको डीठ कहाँ कब कोई?
तेरा अंक-लाभ कर मुझको चाह नहीं अब कोई।
देकर मुझे कलंक-बिन्दु तू बना न चन्द-खिलौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

३२

पात्र—

यशोधरा—गौतम-गृहिणी, राहुल-जननी।

राहुल—बुद्धदेव का पुत्र।

गंगा गौतमी	यशोधरा की सखियाँ।
चित्रा विचित्रा	यशोधरा की दासियाँ

स्थान—

कपिलवस्तु के राजोपवन का अलिन्द।

समय—

सन्ध्या।

गगा

देवि, यदि वह घटना सची हो तो तपस्विनी सीतादेवी भी इसी प्रकार पति-परित्यक्ता होकर आदिकवि के आश्रम में स्वामी का ध्यान करके कुश-लव के लिए जीवन धारण करती होंगी।

यशोधरा

मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ। सखी, सीता देवी ने बहुत सहा। सम्भवत मैं उतना न झेल सकती। कहते हैं, स्वामि-वंचिता होने के साथ साथ उन्हें मिथ्या लोकापवाद भी सहन करना पड़ा था।

गगा

श्रीकृष्ण के वियोग मे गोपियों ने भी बहुत सहन किया।

यशोधरा

हाय! वे उनके लिए कितनी तरसीं। परन्तु मुझे विश्वास है, मैं अपने प्रभु के दर्शन अवश्य पाऊँगी।

गंगा

तुम्हें देख कर मुझे स्वामि-वंचिता शकुन्तला का स्मरण आता है। उनके पुत्र भरत की भाँति ही कुमार राहुल का अभ्युदय हो, यही हम सबकी कामना है।

यशोधरा

अहो! अभागिनी गोपा ही एक दुःखिनी नहीं है। उसकी पूज्य पूर्वजाओं ने भी बड़े दुःख उठाये हैं। उनके बल से मैं भी किसी प्रकार सह लूँगी गंगा!

गौतमी

निर्दयी पुरुषों के पाले पड़ कर हम अबलाजनों के भाग्य में रोना ही लिखा है।

यशोधरा

अरी, तू उन्हें निर्दय कैसे कहती है? वे तो किसी कीट-पतंग का दुःख भी नहीं देख सकते।

गौतमी

तभी न हम लोगों को इतना सुख दे गये हैं?

यशोधरा

वे हमारे सच्चे सुख की खोज में ही गये हैं।

गौतमी

देवि, तुम कुछ भी कहो, परन्तु मै तो यही कहूँगी कि ऐसा सोने का घर छोड कर उन्होंने वन की धूल ही छानो। जननी जन्मभूमि की भी उन्हें कुछ ममता न हुई।

यशोधरा

अरी, सदा माँ की गोद में ही बैठे रहने के लिए पुरुषों का जन्म नहीं होता। स्त्रियों को भी पति के घर जाना पडता है। सारा विश्व जिनका कुटुम्ब है उन्हें जन्मभूमि का बन्धन कैसे बाँध सकता है ?

गौतमी

कुमार राहुल कदाचित् विश्व से बाहर थे। मोह-ममता तो ऐसों को क्या होगी, किन्तु उनके पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा की देख-रेख करना भी क्या उनका कर्तव्य न था।

यशोधरा

हमको तो उस पर बड़ी ममता है । हम क्या इतना भी न कर सकेंगी ? मैं कहती हूँ, राहुल के जन्म ने उन्हें अमृत की प्राप्ति के लिए और भी आतुर कर दिया । परन्तु अब इन बातों को रहने दे । वह आता होगा । मैं उसके सामने हँसती ही रहना चाहती हूँ । परन्तु बहुधा आँसू आ जाते हैं । इससे उसे कष्ट होता है । वह अब समझने लगा है ।

गगा

देवि, कुमार को देख कर ही तुम्हें धीरज धरना चाहिए ।

यशोधरा

ठीक है, विपत्ति मे जो रह जाय वही बहुत है । चित्रा, देख भोजन प्रस्तुत है । यहीं एक ओर उसके लिए आसन लगा । मैं ने अपने हाथों उसके लिए कुछ खीर बनाई है । वह ठंडी हुई या नहीं ? और जो कुछ हो, आम रखना न भूलना ।

चित्रा

जो आज्ञा।

(गई)

यशोधरा

गङ्गा, तू दादाजी के यहाँ जाने योग्य उसकी वेश-भूषा ठीक कर।

(गंगा 'जो आज्ञा' कह कर जिस द्वार से जाती है उसीसे राहुल अलिन्द में आता है। यशोधरा और गौतमी सामने से उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं। परन्तु वह चुपके चुपके उनके पीछे से आना चाहता है। सामने गङ्गा को देख कर मुहँ पर अँगुली रख कर उससे चुप रहने का आग्रह करता है। गंगा मुसकरा कर चुप रहती है। राहुल सहसा पीछे से माँ के गले में हाथ डाल कर पीठ पर पड़ जाता है और 'प्रणाम', 'प्रणाम' कह कर अपना मुहँ बढ़ा कर माता के मुहँ से लगा कर हँसता है)

यशोधरा

जीता रह, बेटा।

राहुल

मेरी जीत हो गई। दादाजी से मैं ने कहा था,—मेरे प्रणाम करने के पहले ही माँ मुझे आशीर्वाद दे देती है। उन्होंने कहा—तू प्रणाम करने में पिछड जाता है। इसीलिए आज मैं ने पीछे से आ कर पहले प्रणाम कर लिया। अब तू हार गई न ?

यशोधरा

वाह ! मैं कैसे हार गई। तू ने छिप कर आक्रमण किया है। इसे मैं तेरी जीत नहीं मानती।

राहुल

क्यों नहीं मानती ? प्रणाम करना क्या कोई प्रहार करना है जो सामने से ही किया जाय। अच्छे काम तो अज्ञात रूप मे भी किये जाते हैं। यह तू ने ही कहा था। नहीं कहा था ?

यशोधरा

बेटा, अब मैं हार गई।

राहुल

तू हार न मानती तो मैं ने दूसरा उपाय भी सोच लिया था।

यशोधरा

सो क्या ?

राहुल

मैं दूर ड्योढ़ी से ही, तुझे देखे बिना ही, 'माँ, प्रणाम,' 'माँ, प्रणाम' कहता हुआ आता।

यशोधरा

बेटा, इसकी आवश्यकता नहीं। मेरा आशीर्वाद तेरे प्रणाम की प्रतीक्षा थोड़े करता है।

राहुल

परन्तु मेरा विनय तो सदा गुरुजनों का आशीष चाहता है। दादाजी कहते हैं, शिष्टाचार के नियम की रक्षा होनी चाहिये। इस कारण मेरे प्रणाम करने पर ही तुझे आशीष देना चाहिए। नहीं माँ ?

यशोधरा

अच्छी बात है, अब मैं तेरे प्रणाम करने पर ही मुहँ से तुझे आशीष दिया करूँगी।

राहुल

मुहँ से ?

राहुल

परन्तु माँ, मुझे तो किसी काम में विशेषता नहीं जान पड़ती। सब बातें साधारणत यथानियम होती दिखाई पड़ती हैं। हाँ, एक तेरे रोने को छोड़ कर! तू हँस पड़ी, यह और भी विचित्र है!

यशोधरा

अच्छा, बेटा, अब भोजन कर।, गोतमी थाली मँगा।

(गौतमी 'जो आज्ञा' कह कर गई)

राहुल

माँ, मेरे साथ तू भी खा।

यशोधरा

बेटा, मैं पीछे खा लूँगी।

राहुल

दादाजी मुझसे कहते थे—तू माँ को खिलाये बिना खा लेता है। मुझे बड़ी लज्जा आई।

यशोधरा

मैं क्या भूखी रहती हूँ? उचित तो यह होगा

कि तू दादाजी को साथ लेकर ही यहाँ भोजन किया कर।

राहुल

यह अच्छी रही! दादाजी तेरे लिए कहते हैं और तू दादाजी के लिए कहती है। यह भी कविता का एक विषय मुझे मिल गया। अच्छा, कल से दो बार तेरे साथ खाया करूँगा और दो बार दादा-जी के साथ। आज तो तू मेरे साथ बैठ। नहीं तो मैं भी नहीं खाऊँगा।

यशोधरा

बेटा, हठ नहीं करते। मेरी तृप्ति तभी होती है जब मैं सब को खिला कर खाऊँ।

राहुल

तू खा लेगी तो क्या फिर कोई खायगा नहीं?

यशोधरा

परन्तु मेरे लिए यह उचित नहीं कि जिनका भार मुझ पर है उन्हें छोड़ कर मैं पहले खा लूँ।

राहुल

तो क्या मुझ पर किसी का भार नहीं ?

यशोधरा

बेटा, तू अभी छोटा है।

राहुल

मैं छोटा हूँ तो क्या ? बल तो मुझमें तुझसे अधिक है। चाहे परीक्षा करके देख ले। मैं घोड़े पर जम कर बैठने लगा हूँ, व्यायाम करता हूँ, शस्त्र चलाना सीखता हूँ। मेरा बाण जितनी दूर जाता है मेरे किसी भी समवयस्क का उतनी दूर नहीं जा सकता। तू तो मेरे साथ दो डग दौड़ भी नहीं सकती।

यशोधरा

फिर भी बेटा, मैं तुझसे बड़ी हूँ।

राहुल

मैं बड़ा होता तो ?

यशोधरा

तो मेरा भार तुझ पर होता।

राहुल

परन्तु मैं तो सदा तुझ से छोटा ही रहूँगा माँ।

अच्छा, पिताजी तो बड़े हैं। वे क्यों हमारी सुध नहीं लेते ?

यशोधरा

लेंगे बेटा, लेंगे। तब तक तेरा भार मुझे दे गये हैं।

राहुल

और तेरा भार किसे दे गये हैं, दादाजी को ?

यशोधरा

हाँ बेटा, दादाजी को।

राहुल

और दादाजी का भार ?

यशोधरा

बेटा, पुरुषों के लिए स्वावलम्बी होना ही उचित है। दूसरों का भार बनना अपने पौरुष का अनादर करना है। यों तो सब का भार भगवान पर है। परन्तु मेरे लिए तो मेरे स्वामी ही भगवान हैं और तेरे लिए तेरे गुरुजन ही।

राहुल

तू ठीक कहती है। मैं ने भी पढ़ा है मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। इसी के साथ माँ, आचार्यदेवो भव भी है।

यशोधरा

ठीक ही तो है बेटा। माता-पिता जन्म देते हैं, परन्तु सफल उसे आचार्य देव ही बनाते हैं। हमें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, वही हमे बताते हैं।

राहुल

सचमुच वे बड़ी बड़ी बातें बताते हैं। आकाश तो मुझे भी गोल गोल दिखाई देता है। वे कहते हैं धरती भी गोल है। वे मुझको उसकी सब बातें बतायँगे।

यशोधरा

क्यों नहीं बतायँगे बेटा।

राहुल

परन्तु मेरा एक सहपाठी तो उनसे ऐसा डरता है मानों वे देव न हो कर कोई दानव हों!

यशोधरा

यह अपना पाठ पढ़ने में कच्चा होगा।

राहुल

तू ने कैसे जान लिया ?

यशोधरा

यह क्या कठिन है। ऐसे ही लडके गुरुजनों के सामने जाने से जी चुराते है।

राहुल

माँ, मैं तो एक दो बार सुन कर ही कोई बात नहीं भूलता। तू चाहे मेरी परीक्षा ले ले।

यशोधरा

तेरे पूर्वजन्म का सस्कार है। तू उस जन्म में पडित रहा होगा, इसलिए इस जन्म में तुझे सहज ही विद्या प्राप्त हो रही है।

राहुल

ऐसी बात है ?

यशोधरा

हाँ बेटा, इस जन्म के अच्छे कर्म उस जन्म में साथ देते है।

राहुल

और बुरे कर्म ?

यशोधरा

वे भी।

राहुल

तो एक बार बुरे कर्म करने से फिर उनसे पिंड छूटना कठिन है ?

यशोधरा

यही बात है बेटा।

राहुल

तो मैं आचार्य देव से कह कर बुरे कर्मों की एक तालिका बनवा लूँगा, जिससे उनसे बचता रहूँ।

यशोधरा

अच्छा तो यह होगा कि तू अच्छे कर्मों की सूची बनवा ले।

राहुल

अच्छी बातें तो वे पढ़ाते ही हैं।

यशोधरा

तब उन्हीं को स्मरण रखना चाहिए। बुरी बातों का स्मरण भी बुरा।

(थाली आती है)

राहुल

तब एक ओर मुझे अज्ञ भी बनना पड़ेगा, जैसे आज असमर्थ बनना पड़ा है। आज्ञा

यशोधरा

सो कैसे ?

राहुल

आज व्यायामशाला में कूदने के लिए बढ़ा कर एक नई सीमा निर्धारित की गई। मेरे साथियों में से कोई भी वहाँ तक नहीं उड़ सका। कूद सकता था। परन्तु सब का मन रखने के लिए मैं समर्थ होते हुए भी, मैं वहाँ तक नहीं गया। कल ही मैंने पढ़ा था—आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

यशोधरा

बड़ा अच्छा पाठ पढ़ा है तू ने बेटा। परन्तु उसका उपयोग ठीक नहीं हुआ। तेरा कोई साथी

मुझसे अधिक योग्यता दिखावे तो क्या इसे अपने प्रतिकूल समझना चाहिए ? नहीं, यह तो अपने लिए उत्साह की बात होनी चाहिए। हमारे सामने जो आदर्श हों हमें उनसे भी आगे जाने का उद्योग करना उचित है। इसी प्रकार हमारा उदाहरण देख कर दूसरों को भी साहस दिखाना चाहिए। नहीं तो वे भी उन्नति न कर सकेंगे और तेरी बल-बुद्धि भी विकसित न हो सकेगी।

राहुल

ऐसी बात है ! तब तो बड़ी भूल हुई माँ।

यशोधरा

परन्तु तेरी भूल में भी सद्भावना थी, इससे मुझे सन्तोष ही है।

गोतमी

माँ-बेटे बातों में ही भूल गये। थाली ठंडी हो रही है। उसका ध्यान ही नहीं।

यशोधरा

सचमुच ! बेटा अब भोजन कर।

राहुल

भूख तो मुझे भी लगी थी, पर तेरी बातों में भूल गया। चलो, अच्छा ही हुआ। दादाजी को सुनाने के लिए बहुत-सी बातें मिल गईं। तू ने भी कहा था, टहलने के पीछे कुछ विश्राम करके ही खाना ठीक होता है।

(भोजन करने बैठता है)

यशोधरा

(अंचल झलती हुई)

अच्छा, अब खा, मैं चुप रहूँगी।

राहुल

तब तो मैं खा ही न सकूँगा।

यशोधरा

जैसे तुझे रुचे वैसे ही सही।

(गंगा मूल्यवान् वस्त्राभूषण लाती है)

राहुल

आहा! खीर बड़ी स्वादिष्ट है। माँ, तू नहीं खाती तो चख कर ही देख।

यशोधरा

बेटा, मैं खीर नहीं खाती।

राहुल

मोतीचूर ?

यशोधरा

वह भी नहीं।

राहुल

दाल-भात, श्रीखण्ड, पापड, दही-बड़े तुझे कुछ नहीं भाते ?

यशोधरा

बेटा, मैं व्रत करती हूँ। फल और दूध ही मेरे लिए यथेष्ट हैं।

राहुल

तू बड़ी अरसज्ञ है। मैं दादाजी से कहूँगा।

यशोधरा

नहीं बेटा, ऐसा न करना। उन्हें व्यर्थ कष्ट होगा।

राहुल

अच्छा, तू उपवास क्यों करती है ?

यशोधरा

मेरे धर्म का यह एक अग है।

राहुल

मेरे लिए यह धर्म कठिन पड़ेगा।

यशोधरा

तुझे इसकी आवश्यकता नहीं।

राहुल

क्यों ?

यशोधरा

धर्म की व्यवस्था भी अवस्था के अनुसार होती है। तू अभी छोटा है। बच्चों के व्रत उनकी माताएँ ही पूरे किया करती हैं।

राहुल

यह ले, मैं तृप्त होगया। चित्रा, हाथ धुला और थाली ले जा।

यशोधरा

अरे, अभी खाया ही क्या है ?

राहुल

और कितना खाऊँ ? मैं क्या बड़ा हूँ ?

यशोधरा

हूँ, इसी के लिए तू छोटा है। जैसी तेरी रुचि।

(राहुल हाथ-मुहँ धोता है)

आ, अब दादाजी के यहाँ जाने योग्य वेश-भूषा बना ले।

राहुल

क्यों माँ, यह वस्त्र क्या बुरे हैं? तू फटे-पुराने पहने और मैं सुवर्ण-खचित पहनूँ? मैं नहीं पहनूँगा। मेरे यही घूमने-फिरने और खेलने के वस्त्र क्या तेरे काषाय-वस्त्रों से भी गये-बीते हैं?

यशोधरा

बेटा, मैं काषाय वस्त्र पहने क्या तुझे भली नहीं जान पड़ती?

राहुल

नहीं, माँ, इनसे तेरा गौरव ही प्रकट होता है। फिर भी मन न जाने कैसा हो जाता है—कभी कभी। तू इतना कठिन तप क्यों करती है?

यशोधरा

तप ही मनुष्यत्व है बेटा!

राहुल

मैं कब तप करूँगा ?

यशोधरा

जब अपने पिता की भाँति पिता बन जायगा। मैं तो यही जानती हूँ। आगे तेरे पिता जानें।

राहुल

माँ, पिताजी की बात आने से तुझे कष्ट होता है। इसलिए मैं उनकी चर्चा ठीक नहीं समझता।

यशोधरा

बेटा, उन्हीं की चिन्ता करके तो मैं जी रही हूँ। तू इच्छानुसार जो कहना हो, कह।

राहुल

अच्छा, मेरे ये वस्त्र क्या तुझे नहीं भाते ? साधारण वस्त्रों में तेरा असाधारण महत्त्व देख कर मुझे भी रत्न-खचित वेश-भूषा छोड़ कर साधारण वस्त्रों का ही लोभ होता है।

यशोधरा

परन्तु तेरी राजोचित वेश-भूषा से तेरे दादाजी

को सन्तोष होता है। उनको प्रसन्नता के लिए तुझे यह त्याग करना ही चाहिए।

राहुल

त्याग सचमुच त्याग ही है। अच्छा, पिता—

यशोधरा

कह बेटा, कह।

राहुल

क्या पिताजी भी ऐसी ही वेश-भूषा धारण करते थे?

यशोधरा

क्यों नहीं।

राहुल

परन्तु तेरे सिरहाने उनका जो चित्र रहता है वह, तो साधु-सन्यासी के रूप में ही है।

यशोधरा

उसे मैं ने उनको अब की अवस्था की कल्पना करके बनाया है।

राहुल

उनका कोई राजवेश का चित्र नहीं है?

यशोधरा

क्यों न होगा।

राहुल

तो मुझे दिखा।

यशोधरा

गौतमी, है कोई चित्र ?

गौतमी

वह अशोकोत्सव वाला ?

यशोधरा

वही ला।

(गौतमी जाती है)

राहुल

माँ, पहले तू भी ऐसे वस्त्राभूषण पहनती होगी ?

यशोधरा

बेटा, कौन-सा राज-वैभव है जो तेरी माँ ने नहीं भोगा ?

राहुल

अब केवल माथे पर लाल लाल बिन्दी ही तुझे अच्छी लगती है ?

यशोधरा

बेटा, यही मेरे सुख-सौभाग्य का चिन्ह है।

राहुल

ऐसी ही बिन्दी मुझे भी लगा दे।

यशोधरा

तेरे लिए केसर, कस्तूरी, गौरोचन और चन्दन ही उपयुक्त है। रोली और अक्षत पूजा के समय लगाऊँगी।

(गौतमी आती है)

गौतमी

कुमार, लो, यह देखो पिताजी का चित्र।

राहुल

ओहो! कहाँ यह राजसी वेश-विन्यास और कहाँ वह सन्यास। परन्तु मुख पर दोनों स्थानों में प्राय: एक ही भाव है। अवस्था में अवश्य कुछ अन्तर है। माँ, सौम्य और साधु भाव में क्या विशेष अन्तर है?

यशोधरा

कोई अन्तर नहीं बेटा।

गङ्गा

कुमार, कैसा है यह रूप ?

राहुल

मेरे जैसा ! एक बार दादीजी मुझे देख कर चौंक पड़ीं और बोलीं मुझे ऐसा जान पड़ा, मानों वही आगया ! मैं ने भी दर्पण में अपना मुख देखा है। क्यों माँ ?

यशोधरा

बेटा, तू ठीक कहता है। अरे, मेरी आँखों में यह क्या आ पड़ा ?

राहुल

निकल गया माँ ? तेरा अचल तो भींग गया। अरे, यह तो देख ! पिता के पास ही यह कौन खड़ी है ? वे उसे मरकत की माला उतार कर दे रहे हैं। वह हाथ बढ़ा कर भी सकुचित-सी हो रही है। सिर नीचा है, फिर भी अधखुली आँखें उन्हीं की ओर लगी हैं। माँ, यह कौन है ?

गौतमी

कुमार, तुम नहीं समझे ?

राहुल

अब ध्यान से देख कर समझ गया। माँ की छोटी बहन मेरी कौन होती हैं?

गौतमी

मौसी।

राहुल

तो ये मेरी मौसी है। मुख माँ के मुख से मिलता है। इतना गौरव नहीं है परन्तु सरलता ऐसी ही है। क्यों माँ, हैं न मौसी ही?

गौतमी

कुमार, माँ की आँखें अब भी किरकिरा रही हैं। मैं तुम्हें बता दूँ। यह इन्हीं का चित्र है।

राहुल

ओहो! इतना परिवर्तन!

यशोधरा

बेटा, बुरा या भला?

राहुल

माँ, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। तेरे इस परिवर्तन में तेरा गौरव ही प्रकट हुआ है। यह

मूर्ति सुख में भी सकुचित-सी है और तू दु:खिनी हो कर भी गौरवशालिनी है। यह पवित्र है, तू पावन। क्या इस अवस्था के परिवर्तन पर तुझे खेद है?

यशोधरा

बेटा, तुझे सन्तोष हो तो मुझे कोई खेद नहीं।

राहुल

बस, पिताजी आ जायँ, तो मुझे पूरा सन्तोष है।

यशोधरा

तू ने मेरे मन की बात कही बेटा।

राहुल

तब आज मुझे वही माला पहना दे जो पिताजी ने तुझे दी थी।

यशोधरा

मैं ने उसे तेरी बहू के लिए रख छोड़ा था। यह भी अच्छा है, उसे वह तेरे ही हाथों पायगी। गौतमी, ले आ।

(गौतमी जाती है)

राहुल

मेरी वहू की तुझे वड़ी चिन्ता है । इससे मुझे ईर्ष्या होती है ।

यशोधरा

क्यों वेटा ?

राहुल

वह आ कर मेरे और तेरे बीच में खड़ी हो जायगी, इसे मैं सहन नहीं कर सकता ।

यशोधरा

मेरी दो जाँघें हैं, एक पर तू बैठेगा, दूसरी पर वह बैठेगी ।

राहुल

परन्तु जिस जाँघ पर मैं बैठना चाहूँगा उसी पर वह बैठना चाहेगी तो झगड़ा न मचेगा ?

यशोधरा

मैं उसे समझा लूँगी ।

राहुल

काहे से समझा लेगी ? मुहँ तो तेरे एक ही

है। यह मेरे भाग में है। उससे मैं तुम्हे यहू के साथ घात करने दूँगा तब न ?

यशोधरा

इतना बडा स्वार्थी होगा तू ?

राहुल

इसमें स्वार्थ की क्या बात है माँ, यह तो स्वत्व को बात है।

गगा

परन्तु, कुमार, अधिकार क्या अकेले ही भोगा जाता है ?

राहुल

तुम भी माँ की ओर मिल गई हो।

गौतमी

(आ कर)

कुमार, मैं तुम्हारी ओर हूँ। समय आये तब देख लेना। अभी से क्या झगडा। लो, यह मरक्त की माला।

राहुल

(पहन कर)

अरे ! यह तो मुझे बडी बैठी।

(उतार कर)

मॉं, एक बार तू ही इसे पहन।

यशोधरा

बेटा, मैं ?

राहुल

इस हँसी से तो तेरा रोना ही भला। पहन मॉं, मैं देखूँगा।

गौतमी

देवि, माथे पर सिन्दूर-बिन्दु धारण करती हुई किस विचार से तुम कुमार की इच्छा पूरी करने में असमजस करती हो ? जो ऐसा करने से तुम्हें रोकता है वह धर्म नहीं, अधर्म है।

यशोधरा

पहना दे बेटा !

राहुल

(पहना कर)

अहा हा ! यह राजयोग है। चित्रा, दर्पण तो लाना।

यशोधरा

रहने दे बेटा, तू ही मेरा दर्पण है। अरे, यह विचित्रा क्या लाई ?

विचित्रा

जय हो देवि, महाराज ने कुमार के लिए यह वीणा भेजी है, और पूछा है वे कब तक आते हैं ?

राहुल

वे क्या कर रहे हैं ?

विचित्रा

कुमार, महाराज अभी सध्या करने के लिए उठे हे।

राहुल

जब तक वे सन्ध्या से निवृत्त हों, मैं पहुँचता हूँ।

विचित्रा

जो आज्ञा।

(गई)

राहुल

माँ, दादाजी ने मुझ से कहा था तू बड़ा अच्छा बजाती है। तू ही मुझे वीणा सिखाया कर।

इसीसे दादाजी ने मेरे लिए यह वीणा बनने की आज्ञा दी थी।

यशोधरा

बेटा, मैं तो सब भूल गई। परन्तु वीणा है सुन्दर।

राहुल

इसीसे अपने आप तेरी अँगुलियाँ इसे छेड़ने लगीं। कैसी बोलती है यह?

यशोधरा

अच्छी—तेरे योग्य।

राहुल

माँ, तनिक इसे बजा कर कुछ गा।

यशोधरा

बेटा, यह छोटी है।

गङ्गा

कुमार, परन्तु स्वर दे सकेगी। गाने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

यशोधरा

अरी, यह यों ही रूठी है, ऊपर से इसे तुम और भी उकसा रही हो।

राहुल

माँ, अपनी इच्छा से तू रोती-गाती है। मैं कहता हूँ तो मुझे हठी बताती है। यही सही। तू न गायगी तो मैं रोने लगूँगा।

(हँसता है)

यशोधरा

गाती हूँ बेटा, तेरे लिए जी रही हूँ तो गाऊँगी क्यों नहीं ?

(गान)

रुदन का हँसना ही तो गान।
गा गा कर रोती है मेरी हृत्तन्त्री की तान।
मीड-मसक है कसक हमारी, और गमक है हूक,
चातक की हुत-हृदय हृति जो, सो कोइल की कूक।

छेडो न वे लता के छाले, उड़ जावेगी धूल,
हल्के हाथों प्रभु के अर्पण कर दो उसके फूल,
गन्ध है जिनका जीवन दान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

कादम्बिनी प्रसव की पीडा हँसी तनिक उस ओर,
क्षिति का छोर छू गई सहसा वह बिजली की कोर।
उजलती है जलती मुसकान,
रुदन का हँसना ही तो गान।

यदि उमग भरता न अद्रि के ओ तू अन्तर्दाह,
तो कल कल कर कहाँ निकलता निर्मल सलिल प्रवाह?
सुलभ कर सबको मज्जन पान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

पर गोपा के भाग्य भाल का उलट गया वह इन्दु,
टपकाता है अमृत छोड कर ये खारी जल बिन्दु!
कौन लेगा इनको भगवान?
रुदन का हँसना ही तो गान।

राहुल

माँ, माँ, रुलाई आती है। ये गङ्गा, गौतमी और चित्रा सभी तो रो रही हैं।

यशोधरा

बेटा, बेटा, आ मेरी छाती से लग जा।

(बलपूर्वक भेंटती है)

राहुल

ओह! ओह!

गौतमी

छोड़ दो, छोड़ दो देवि, कुमार को। यह क्या करती हो?

(यशोधरा भुजपाश ढीला करती है)

राहुल

आह! प्राण बचे। मैं तो तुझे सर्वथा दुर्बल समझता था। परन्तु तू ने इतने बल से मुझे दबाया कि मेरी साँस रुकने लगी माँ! हाथ जोड़े मैं ने तेरे छाती से लगने को! फिर भी तू रोती है? रोना मुझे चाहिए या तुझे?

यशोधरा

बेटा, मैं तुझे हँसता ही देखूँ।

राहुल

अच्छा, रात को कहानी कहेगी न?

यशोधरा

कहूँगी।

राहुल

मेरी जीत! जाऊँ तो झटपट दादाजी के यहाँ हो आऊँ।

३३

राहुल

अम्ब, मन करता है, पत्र लिखूँ तात को।

यशोधरा

क्या लिखेगा बेटा, सुनूँ मैं भी उस बात को?

राहुल

मैं लिखूँगा—तात, तुम तपते हो वन में,
हम हैं तुम्हारा नाम जपते भवन में।
आओ यहाँ, अथवा बुला लो हम को वहाँ।

यशोधरा

किन्तु बेटा, कौन जाने तेरे तात हैं कहाँ?

राहुल

वे हैं वहाँ अम्ब, जहाँ चाहे और सब हैं,
किन्तु सोच, ऐसी धृति ऐसी स्मृति कब हैं?
ऐसा ठौर होगा कहाँ, जो सुध भुला दे माँ,
जागते ही जागते जो हमको सुला दे माँ?

यशोधरा

ऐसा ठौर हो तो वह बेटा, तुझे भायगा?

राहुल

अम्ब, नहीं, ध्यान वहाँ तेरा भी न आयेगा।
मानता हूँ, वेदना ही बजती है ध्यान में,
किन्तु एक सुख भी तो रहता है ज्ञान में।

यशोधरा

तो भो तात होंगे वहाँ।

राहुल

वे क्या मुझे मानेंगे?
विस्मृति के बीच कह, कैसे पहचानेंगे?
ऐसी युक्ति हो जो वही आप यहाँ आ जावें,
जानें-पहचानें हमें हम उन्हें पा जावें।

यशोधरा

बेटा, यही होगा, यही होगा, धैर्य धर तू,
शक्ति निज भक्ति और भावना में भर तू।

३४

राहुल

अम्ब, पिता आयेंगे तो उनसे न बोलूँगा,
और संग उनके न खेलूँगा न डोलूँगा।

यशोधरा

बेटा, क्यों?

राहुल

गये वे अम्ब, क्यों कुछ बिना कहे?
हम सबने ये दुःख जिससे यहाँ सहे।

यशोधरा

अविनय होगा किन्तु बेटा, क्या न इससे?

राहुल

अविनय? कैसे भला, किस पर, किससे?
अम्ब, क्या उन्होंने आप अनय नहीं किया?
मुझको रुला कर अजाना पथ है लिया।

यशोधरा

ऐसा ठौर हो तो वह बेटा, तुझे भायगा?

राहुल

अम्ब, नहीं, ध्यान वहाँ तेरा भी न आयेगा।
मानता हूँ, वेदना ही बजती है ध्यान में,
किन्तु एक सुख भी तो रहता है ज्ञान में।

यशोधरा

तो भी तात होंगे वहाँ।

राहुल

वे क्या मुझे मानेंगे?
विस्मृति के बीच कह, कैसे पहचानेंगे?
ऐसी युक्ति हो जो वही आप यहाँ आ जावें,
जानें-पहचानें हमें हम उन्हें पा जावें।

यशोधरा

बेटा, यही होगा, यही होगा, धैर्य धर तू,
शक्ति निज भक्ति और भावना में भर तू।

यशोधरा

बेटा रे, प्रसव की-सी पीड़ा मुझे होती है।

राहुल

इससे क्या होगा अम्ब?

यशोधरा

बेटा, वृद्धि उनकी,

बहन बनेगी यही तेरी, सिद्धि उनकी।

यशोधरा

किन्तु कोई अनय करे तो हम क्यों करें ?

राहुल

और नहीं माथे पर क्या हम उसे धरें ?

यशोधरा

बेटा, इसे छोड़ और अपना क्या बस है ?

राहुल

न्याय तो सभी के लिए अम्ब, एक रस है।

यशोधरा

न्याय से वे पालन ही करने को बाध्य हैं ?
लालन करें या नहीं ?

राहुल

फिर भी क्या साध्य हैं ?
प्रेमशून्य पालन क्यों चाहें हम उनका ?

यशोधरा

किन्तु क्या किसी पर है प्रेम कम उनका ?

राहुल

अम्ब, फिर तू क्यों यहाँ रह रह रोती है ?

यशोधरा

"सिद्धि मिलने तक" कहेंगे क्या न वे यही ?

राहुल

तो क्या सिद्धि मिलने का एक थल है वही ?

यशोधरा

बेटा, यहाँ विघ्न, उन्हें हम सब घेरेंगे।

राहुल

किन्तु धीर हैं तो अम्ब, वे क्यों ध्यान फेरेंगे ?
वन में तो इन्द्र भी प्रलोभन दिखायगा,
विश्वामित्र-तुल्य उन्हें क्या यह न भायगा ?
मुझको तो उसमें भी लाभ दृष्टि आता है—
भगिनी शकुन्तला-सी, राहुल-सा भ्राता है !
मेनका तो वंचिका थी, तू फिर भी उनकी,
और रहो चाहे जहाँ, सिद्धि तो है धुन की।
तेरी गोद में ही अम्ब, मैं ने सब पाया है,
ब्रह्म भी मिलेगा फल, आज मिली माया है।

३५

राहुल

अम्ब, दमयन्ती की कहानी मुझे भाई है,
और एक बात मेरे ध्यान में समाई है।
तू भी एक हंस को बना के दूत भेज दे,
जो सन्देश देना हो उसीको तू सहेज दे।

यशोधरा

बेटा, भला वैसा हंस पा सकूँगी मैं कहाँ?

राहुल

हंस न हो, मेरा धीर कीर तो पला यहाँ।

यशोधरा

किन्तु नहीं सूझता है, उनसे मैं क्या कहूँ?

राहुल

पूछ यही बात—"और कब तक मैं सहूँ?"

यशोधरा

बेटा, घर छोड वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड लिया नाता है उन्होंने सब सृष्टि से।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

राहुल

लाभ इससे क्या अम्ब, अपनों को छोड के,
बैठ जायँ दूसरों मे वे सम्बन्ध जोड के?

यशोधरा

अपनों को छोड के क्यों बैठ भला जायँगे?
अपनों के जैसा ही सभी का प्रेम पायँगे।

राहुल

माँ, क्या सब ओर होगा अपना ही अपना?
तब तो उचित ही है तात का यों तपना।

३६

राहुल

ऐसे गिरि, ऐसे वन, ऐसी नदी, ऐसे कूल,
ऐसा जल, ऐसे थल, ऐसे फल, ऐसे फूल,
ऐसे खग, ऐसे मृग, होंगे अम्ब, क्या वहाँ,
करते निवास होंगे एकाकी पिता जहाँ?

यशोधरा

बेटा, इस विश्व में नहीं है एकदेशता,
होती कहीं एक, कहीं दूसरी विशेषता।
मधुर बनाता सब वस्तुओं को नाता है,
भाता वहीं उसको जहाँ जो जन्म पाता है।

राहुल

अम्ब, क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया है?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें भाया है?

माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं,
जाना, ये दाडिम, आम सभी सड़ते हैं।
पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते हैं?
या काँटे ही चिरकाल हमें गड़ते हैं?
मैं विफल तभी, जब बीज-रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

यदि हम में अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें, स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है,
नवजीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है?
भव मारे मुझको और उसे मैं मारूँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

आ कर पूछेंगे जरा-मृत्यु यदि हम से,
शैशव-यौवन की बात व्यग्र-विभ्रम से,
हे नाथ, बात भी मैं न करूँगी यम से,
देखूँगी अपनी परम्परा को क्रम से।
भावी पीढ़ी में आत्मरूप अपनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

यशोधरा

१

निज बन्धन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

जाना चाहे यदि जन्म, भले ही जावे,
आना चाहे तो स्वयं मृत्यु भी आवे,
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे,
मेरा तो सब कुछ वही, मुझे जो भावे।
मैं मिलन-शून्य में विरह घटा-सी छाऊँ!
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

आओ, प्रिय ! भव में भाव-विभाव भरें हम ,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्य-काम भी काम, स्वधर्म धरें हम ,
संसार-हेतु शत वार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो क्षेम से, प्रेम-गीत मैं गाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

ये चन्द्र-सूर्य्य निर्वाण नहीं पाते हैं,
ओझल ही हो कर हमें दृष्टि आते हैं।
झोंके समीर के झूम झूम जाते हैं,
जा जा कर नीरद नया नीर लाते हैं।
तो क्यों जा जा कर लौट न मैं भी आऊँ?
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

रस एक मधुर ही नहीं, अनेक विदित हैं,
कुछ स्वादु हेतु, कुछ पथ्य हेतु समुचित हैं।
भोगें इन्द्रिय, जो भोग विधान-विहित हैं,
अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जित हैं।
निज कर्मों की ही कुशल सदैव मनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुख रहता?
प्रिय-हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता।
रह दु:ख! प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

३

मरने से बढ़ कर यह जीना।
अप्रिय आशकाएँ करना
भय खाना हा! आँसू पीना!
फिर भी बता, करे क्या आली,
यशोधरा है अवश-अधीना।
कहाँ जाय यह दीना-हीना,
उन चरणों में ही चिर लीना।

२

मेरा मरण तुमको खला।
किन्तु मैं ले कर करूँ क्या विरह-जीवन जला ?
लौट आओ प्रिय, तुम्हारा पुण्य फूला-फला,
भाग जो जिसका उसे दो, जाय क्यों वह छला ?
देख लूँ, जब तक जगूँ भव-नाट्य की नव कला,
और फिर सोऊँ तुम्हारी बाँह पर धर गला।
सब भला उसका भुवन में, अन्त जिसका भला,
जीव पहुँचेगा वहीं तो, वह जहाँ से चला।

बहता वहाँ पास ही जल था,
किन्तु कहाँ जाने का बल था?
मन-सा तन भी पड़ा अचल था,
भार आप ही अपना!
ओहो! कैसा था वह सपना?

सहसा माँ भगिनी घन आई,
स्वर्गवासिनी वे मनभाई।
सुरसरि-जल अमृतोदन लाईं,
फिर भी मुझे कलपना।
ओहो! कैसा था वह सपना?

४

ओहो, कैसा था वह सपना?
जा है रजनी में सजनी, मैं ने उनका तपना।

कृया भरी, पर शोणित सूखा,
वर्ण कौंचरा हो कर रूखा,
पैठा पेट पीठ में भूखा,
आया मुझे विलपना!
ओहो, कैसा था वह सपना?

बहता वहाँ पास ही जल था,
किन्तु कहाँ जाने का बल था?
मन-सा तन भी पड़ा अचल था,
भार आप ही अपना!
ओहो! कैसा था वह सपना?

सहसा माँ भगिनी बन आईं,
स्वर्गवासिनी वे मनभाईं।
सुरसरि-जल अमृतोदन लाईं,
फिर भी मुझे कलपना।
ओहो! कैसा था वह सपना?

५

क्यों फड़क उठे ये वाम अंग?
ज्यों उड़ने के पहले विहग!

किस शुभ घटना की रटना-सी
लगा रहा है अन्तरंग?
क्यों यह प्रकृति प्रसन्न हो उठी?
नहीं कहीं कुछ रागरंग।
उठती है अन्तर में कैसी
एक मिलन जैसी उमंग,
लहराती है रोम रोम में
अहा! अमृत की-सी तरंग!

पाना दुर्लभ नहीं, कठिन है
रख पाने का ही प्रसग,
मिला मुझे क्या नहीं स्वप्न में
किन्तु हुआ वह स्वप्न भग!
वचक विधि ने लिया न हो सधि,
अब यह कोई और ढग?
पर मेरा प्रत्यय तो फिर भी
है मेरे ही प्राण-सग।

६

गये हो तो यह ज्ञात रहे,
स्वामी! व्यर्थ न दिव्य देह वह
तप - वर्षा हिम - वात सहे।

देखो, यह उत्तुङ्ग हिमालय,
खड़ा अचल योगी-सा निर्भय।
एक ओर हो यह विस्मयमय,
एक ओर यह गात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

बहे उधर गंगा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपारा।
प्लावित कर दे अग जग सारा,
हाँ, युग युग अवदात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

मुझे मिलोगे भला कहीं तो,
वहाँ सही, यदि यहाँ नहीं तो।
जहाँ सफलता मुक्ति वहीं तो,
यशोधरा की बात रहे।
गये हो तो यह ज्ञात रहे।

७

ओ यतियों-व्रतियों के आश्रय,
अभय हिमालय! भूधर-भूप!
हम सतियों की ठंडी ठंडी
आहों के ओ उच्चस्तूप!
तू जितना ऊँचा, उतना ही
गहरा है यह जीवन-कूप,
किन्तु हमारे पानी का भी
होगा तू ही साक्षी-रूप।

८

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।

पहले हो तुम यशोधरा के,
पीछे होगे किसी परा के,
मिथ्या भय हैं जन्म-जरा के,
इन्हें न उनमें सानो,
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

देखूँ प्रकाशी क्या होगे?
गोपा भी होगी, तुम होगे।
मेरे हो, तो मेरे होगे,
भूले हो, पहचानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

वधू सदा मैं अपने वर की,
पर क्या पूर्ति वासना भर की?
सावधान! हाँ, निज कुलधर की
जननी मुझको जानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

६

रोहिणि, हाय ! यह वह तीर,
बैठते आ कर जहाँ वे धर्मधन, ध्रुवधीर।

मैं लिये रहती विविध पक्वान्न भोजन, खीर,
वे चुगाते मीन, मृग, खग, हंस, केकी, कीर।

पालता है तात का व्रत आज राहुल वीर,
लो इसे, जब तक न लौटें वे ललित-गंभीर।

कुटिल गति भी गण्य तेरी, धन्य निर्मल नीर,
वार दूँ मैं इस झलक पर मंजु मुक्ता-हीर।

वह चली लोकार्थ ही तू पहन पावन चीर,
रह गया दो बूँद दे कर यह अशक्त शरीर !

राहुल-जननी

१

तुझे नदीश मान दे,
नदी, प्रदीप-दान ले।

तुझे और क्या दूँ ? थोड़ा भी आज बहुत तू मान ले,
तम में विषम मार्ग का इसको तुच्छ सहायक जान ले।

मिलें कहाँ मेरे प्रभु पथ में, तू उनका सन्धान ले,
तुझे कठिन क्या है यह, यदि तू अपने मन में ठान ले।

मेरे लिए तनिक चक्कर खा, नव यात्रा की तान ले,
घूम घूम कर, झूम झूम कर, थल थल का रस-पान ले।

कह देना इतना ही उनसे जब उनको पहचान ले—
"धाय तुम्हारे सुत की गोपा बैठी है बस ध्यान ले।"

२

"जल के जीव हैं माँ, मीन,
नयन तेरे मीन-से हैं, सजल भी क्यों दीन?

पद्मिनी-सी मधुर मृदु तू, किन्तु है क्यों छीन?
मन भरा है, किन्तु तन क्यों हो रहा रस-हीन?

अम्ब, तेरा स्तन्य पी कर हो गया मैं पीन,
दुग्ध-तन मुझमें पिता में मुग्ध-मन है लीन?

हाय! क्या तू त्याग पर ही है यहाँ आसीन?
धिक् मुझे, कह क्या करूँ मैं? हूँ सदैव अधीन।"

"लाल, मेरे बाल, साले सुध मुझे प्राचीन,
भय नहीं, साहित्य तेरा प्राप्त नित्य नवीन।"

३

"मातः, मैं भी तो सुनूँ, कैसी है वह मुक्ति?"
"पुत्र, पिता से पूछना और उन्हीं से युक्ति।"

"तू केवल कन्थक बतला दे, अम्ब, अभी चढ़ पाऊँ,
मुक्ति बड़ी या मेरी माता, पूछ पिता से आऊँ।

न रो, कहीं भी क्यों न रहें वे, ठहर, उन्हें घर लाऊँ,
नहीं चाहता मैं वह कुछ भी, जिसमें तुझे न पाऊँ।

कहाँ मिलेगी मुक्ति, बता तो? उसे जीतने जाऊँ,
बाँध न लाऊँ इन चरणों में, तो राहुल न कहाऊँ।"

"बेटा, बेटा, नहीं जानती, मैं रोऊँ या गाऊँ,
आ, मेरे कन्धों पर चढ़ आ, तुझको भी न गँवाऊँ।"

४

"अम्ब, पिता के ध्यान में बिसरा तेरा ज्ञान,
भूल गई तू आपको बस, उनको पहचान।

अपने को खो कर उन्हें खोज रही तू आज,
और आत्मरत हैं उधर वे तेरे अधिराज!

कहती है भगवान तू उनको बारबार,
किन्तु उन्हें भगवान का आया कभी विचार?

सुध करके सुध खो रही तू उनकी छवि आँक,
वे तेरी इस मूर्ति को देखेंगे कब झाँक?

गाती है मेरे लिए, रोती उनके अर्थ,
हम दोनों के बीच तू पागल-सी असमर्थ!"

"रोना-गाना बस यही जीवन के दो अंग,
एक-संग में ले रही दोनों का रस-रंग।"

५

सती शिवा-सी तपस्विनी माँ, देख द्विजा यह आ रही ,
भर गम्भीर निज शून्य स्वयं ही उसको क्षुब्ध-सी छू रही !
सौध-शिखर पर स्वर्ण-वर्ण की आतप आभा भा रही ,
ज्यों तेरे अचल की छाया मेरे सिर पर छा रही !
ज्यों तेरी पलकों पर आँसू, किरण तुहिन-कण पा रही ,
शुचि-स्नेह का चन्द्र-बिन्दु-सा आत्मतेज से ला रही !
शीतल-मंद-पवन वन वन से सुरभि निरन्तर ला रही ,
ज्यों अनुभूति अदृश्य तात की झोंकों-झोंकों आ रही !
रवि पर नलिनी की, पितृ-छवि पर मौन दृष्टि तव जा रही ,
यहाँ अंक में मधुप, यहाँ मैं, गिरा एक गुण गा रही !

सन्धान

(एकान्त में यशोधरा)

(गान)

आओ हो वनवासी !
अब गृह भार नहीं सह सकती
देव, तुम्हारी दासी ।

राहुल पल कर जैसे तैसे,
करने लगा प्रश्न कुछ वैसे,
मैं अबोध, उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी,
आओ हो वनवासी !

५

सती शिवा-सी तपस्विनी माँ, देख द्विधा यह आ रही,
भर गभीर निज शून्य स्वयं ही उसको तुझ-सी था रही।
सौध-शिखर पर स्वर्ण-वर्ण की आतप आभा भा रही,
ज्यों तेरे अंचल की छाया मेरे सिर पर छा रही।
ज्यों तेरी वरुनी यह आँसू, किरण तुहिन-कण पा रही,
शुचिस्नेह का केन्द्र-बिन्दु-सा आत्मतेज से ,ता रही।
शीतल-मंद-पवन वन वन से सुरभि निरन्तर ला रही,
ज्यों अनुभूति अदृश्य तात की सुकर्मों-तुकर्मों धा रही।
रवि पर नलिनी की, पितृ-छवि पर मौन दृष्टि तव जा रही,
वहाँ अंक में मधुप, यहाँ मैं, गिरा एक गुण गा रही।

सन्धान

(एकान्त में यशोधरा)

(गान)

आओ हो वनवासी !
अब यह भार नहीं सह सकती
देव, तुम्हारी दासी ।

राहुल पल कर जैसे तैसे,
करने लगा प्रश्न कुछ वैसे,
मैं अबोध, उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी,
आओ हो वनवासी !

उसे बताऊँ क्या, तुम आओ,
मुक्ति-युक्ति मुझसे सुन जाओ—
जन्म-मूल मातृत्व मिटाओ,
मिटे मरण-चौरासी!
आओ हो वनवासी!

सहे आज यह मान तितिक्षा,
क्षमा करो मेरी यह शिक्षा।
हमीं गृहस्थ जनों की भिक्षा,
पालेगी सन्यासी!
आओ हो वनवासी!

मुझको *सोती* छोड गये हो,
पीठ फेर मुँह मोड गये हो,
तुम्हीं जोड कर तोड गये हो,
साधु विराग विलासी!
आओ हो वनवासी!

जल में शतदल तुल्य सरसते—
तुम घर रहते, हम न तरसते,
देखो, दो दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी !
आओ हो वनवासी !

(गौतमी का प्रवेश)

गौतमी

मिल गया, मिल गया, मिल गया सहसा
उनका सन्धान आज, जिनके बिना यहाँ
खान-पान नीरस था, सोना बुरा स्वप्न था,
रोना ही रहा था हाय ! जीवन मरण था।
तुम जड मूर्ति-सी भले ही स्तब्ध हो जाओ,
किन्तु नई चेतना से अग भरे पूरे हैं।
मैं ने आज देखे अहा ! अश्रु ऐसे होते हैं।
रुद्ध भी तुम्हारी गिरा जगती में गूँजी है,
देखो, यह सारी सृष्टि पुलकित हो गई !
जै जै अत्रभवति ! हमारे भाग्य जागे हैं।

उसको क्षमा कर तू आली, साँस लेती हूँ,
हर्ष की अधिकता भी भार बन जाती है!
आगे कह उनसे भी प्यारा वृत्त उनका।

गौतमी

अचल समाधि रही, बाधाएँ विला गईं,
देवि, वह दिव्य दृष्टि पा कर ही वे उठे,
जिसमें समस्त लोक और तीनों काल भी
दर्पण में जैसे, उन्हें दीख पड़े, सृष्टि के
सारे भेद खुल गये, चेतन का, जड़ का,
कोई भी प्रकार-व्यवहार नहीं जा सका।
दुःख का निदान और उसकी चिकित्सा भी
ज्ञात हुई। जन्म तथा मृत्यु के रहस्य को
जान कर देव स्वयं जीवन्मुक्त हो गये।
और, धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के साथ ही,
दूसरों को भी वे मुक्ति-मार्ग में लगा रहे।

यशोधरा

जय हो, सदैव आर्यपुत्र की, विजय हो।
उनके करुण-धर्म-संघ के शरण में
गोपा के लिए भी कहीं ठौर होगी या नहीं।

आली, उनकी जो दृष्टि सृष्टि-भेदिनी है, क्या
इस चिर किंकरी के ऊपर भी आयगी?
अब तक भी मैं यहाँ वंचिता ही क्यों रही?

गौतमी

किन्तु अब शीघ्र वह अवसर आवेगा,
जब तुम उनके समीप बैठ, उनमें,
विस्मय-विनोद से सुनोगी, जन्म जन्म की
अपनी कथाएँ, और साथ साथ उनकी।

यशोधरा

सारी घटनाएँ वही जानें, किन्तु इतना
मैं भी भली भाँति जानती हूँ, जन्म जन्म में
आली, मैं उन्हीं की रही, वे भी जन्म जन्म में
मेरे रहे, तब तो मैं उनकी, वे मेरे हैं।
अब इतना ही मुझे पूछना है उनसे—
जो कुछ उन्होंने उस जन्म में मुझे दिया,
उसको मैं अब भी चुका सकी हूँ या नहीं?

(दौड़ते हुए राहुल का प्रवेश)

राहुल

माँ, माँ, पिता प्राप्त हुए, देख तू ये दादाजी—

दादीजी - समेत हर्ष-विह्वल-से आ रहे!
अब तो न रोयगी तू? अब भी तू रोती है!

यशोधरा

बेटा, और क्या करूँ?

राहुल

बता दूँ? चल शीघ्र ही
हम सब आगे बढ़ आप उन्हें लावेंगे।

(नेपथ्य में)

बेटी! बहू!

यशोधरा

व्यग्र न हो राहुल! वे आगये!

राहुल

मैं तो चला, अम्ब, सब वस्तुएँ सहेज लूँ,
जोड़ता रहा जो उन्हें देने को, दिलाने को।

(प्रस्थान)

गौतमी

मैं भी चलूँ, उत्सव के आयोजन में लगूँ।

(प्रस्थान)

(शुद्धोदन और महाप्रजावती का प्रवेश)

यशोधरा

तात, अम्ब, गोपा चरणों में नत होती है।

दोनों

अक्षय सुहाग तेरा ! व्रत भी सफल है।

शुद्धोदन

सावित्री-समान तेरे पुण्य से ही उसको
सिद्धि मिली।

महाप्रजावती

तेरा यह विषम वियोग भी
धन्य हुआ !

शुद्धोदन

उसने अपूर्व योग पाया है।
गोपा और गौतम का नाम भी जगत में
गौरी और शंकर-सा गण्य तथा गेय हो !
अब क्यों विलम्ब किया जाय बेटी, शीघ्र तू
प्रस्तुत हो। यह रहा मगध, समीप ही,
उसके लिए तो हम जगती के पार भी

जाने को उपस्थित हैं और उसे पाने को
जीवन भी देने को समुद्यत हैं—सर्वदा!

यशोधरा

किन्तु तात ! उनका निदेश बिना पाये मैं,
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी?

महाप्रजावती

हाय बहू, अब भी निदेश की अपेक्षा है?

शुद्धोदन

बेटी, इतना भी अधिकार क्या हमें नहीं?

यशोधरा

मुझको कहाँ है ? मैं तुम्हारी नहीं, अपनी
बात कहती हूँ तात ! गोपा हतभागिनी !

महाप्रजावती

गोपे, हम अबलाजनों के लिए इतना
तेज—नहीं, दर्प—नहीं, साहस क्या ठीक है?
स्वामी के समीप हमें जाने से स्वयं वही
रोक नहीं सकते हैं, स्वत्व आप अपना
त्याग कर बोल, भला तू क्या पायगी बहू?

यशोधरा

उनका अभीष्ट मात्र ! और कुछ भी नहीं।
हाय अम्ब ! आप मुझे छोड़ कर वे गये,
उनका मन होगा तब आप आके अथवा
मुझको बुलाके, चरणों में स्थान देवेंगे।

महाप्रजावती

बाधा कौन सी है तुझे आज वहाँ जाने में?

यशोधरा

बाधा तो यही है, मुझे बाधा नहीं कोई भी!
विघ्न भी यही है, जहाँ जाने मे जगत में
कोई मुझे रोक नहीं सकता है—धर्म से,
फिर भी जहाँ मैं, आप इच्छा रहते हुए,
जाने नहीं पाती! यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठी रहती मैं? छान डालती धरित्री को।
सिंहनी-सी काननों में, योगिनी-सी शैलों में,
शफरी-सी जल में, विहगिनी-सी व्योम में
जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं!
मेरा सुधा-सिंधु मेरे सामने ही आज तो

लहरा रहा है, किन्तु पार पर मैं पड़ी
प्यासी मरती हूँ, हाय ! इतना अभाग्य भी
भव में किसी का हुआ ? कोई कहीं ज्ञाता हो,
तो मुझे बता दे हा ! बता दे हा ! बता दे हा !
(मूर्च्छा)

महाप्रजावती

मूर्च्छित है हाय ! मेरी मानिनी यशोधरा।
(उपचार)

शुद्धोदन

बेटी, उठ, मैं भी तुझे छोड़ नहीं जाऊँगा।
तेरे अश्रु लेकर ही मुक्ति-मुक्ता छोड़ूँगा।
तेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी अपेक्षा है।
गोपा-बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको !
जाओ, अरे, कोई उस निर्मम से यों कहो—
झूठे सब नाते सही, तू तो जीव मात्र का,
जीव-दया-भाव से ही हमको उबार जा !

यशोधरा

१

क्या देकर मैं तुमको लूँगी ?
देते हो तुम मुक्ति जगत को,
प्रभो, तुम्हें मैं बन्धन दूँगी ।

बाँध बद्ध ही तुम्हें न लाते, — गृहस्थ लोग
तो क्या तुम इस भू पर आते ?
निर्गुण के गुण गाते गाते,
हुई गभीर गिरा भी गूँगी,
क्या देकर मैं तुमको लूँगी !

पर मैं स्वागत-गान करूँगी,
पाद - पद्म - मधु - पान करूँगी,
बस इतना ही मान करूँगी,
तुम होगे तो मैं भी हूँगी ।
क्या देकर मैं तुमको लूँगी ?

७

प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं?
यह नश्वर तनु लेकर कैसे
स्वागत सिद्ध करूँगी मैं?

नश्वर तनु पर धूल! किन्तु हाँ, उन्हीं पदों की धूल,
कर्म-बीज जो रहें मूल में, उनके सब फल-फूल
अर्पण तुम्हें करूँगी मैं।
प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं?

जीवन्मुक्त भाव से तुमने किया अमर-पद-लाभ,
पर उस अमरमूर्त्ति के आगे ओ मेरे अमिताभ!
सौ सौ बार मरूँगी मैं!
प्रिय क्या भेंट धरूँगी मैं?

३

तुच्छ न समझो मुझको नाथ,
अमृत तुम्हारी अंजलि में तो भाजन मेरे हाथ।

तुल्य दृष्टि यदि तुमने पाई,
तो हम में ही सृष्टि समाई।
स्वयं स्वजनता में वह आई,
देकर हम स्वजनों का साथ।
तुच्छ न समझो मुझको नाथ।

ममता को लेकर ही समता,
ममता में है मेरी क्षमता,
फिर क्यों अब यह विरह विषमता?
क्यों अपेय इस पथ का पाथ?
तुच्छ न समझो मुझको नाथ।

४

देकर क्या पाऊँगी तुम्हें मैं, कहो, मेरे देव,
लेकर क्या सम्मुख तुम्हारे अहो! आऊँगी?
मानस में रस है परन्तु उसमें है क्षार;
बस में यही है बस आँखें भर लाऊँगी!
धव, तुम ऋतु-समान यदि आये यहाँ,
एक नवता-सी मैं उसी में फब जाऊँगी,
मेरे प्रतिपाल, तुम प्रलय समान आये,
तो भी मैं, तुम्हीं में, हाल, बेला-सी बिलाऊँगी!

५

लूँगी क्या तुमको रोकर ही?
मेरे नाथ, रहे तुम नर से नारायण हो कर ही!

उस समाधि-बल की बलिहारी,
अच्छी मैं नारी की नारी।
पूजा तो कर सकूँ तुम्हारी,
धुलूँ चरण धोकर ही।
लूँगी क्या तुमको रो कर ही?

वह मेरी जनता ही होगी,
स्वय जनार्दन जिसके भोगी।
आओ हे अनुपम उद्योगी,
पाऊँ सुध खो कर ही !
लूँगी क्या तुमको रो कर ही ?

यदि प्रभुत्व है तुम में आया,
तो मैं ने भी प्रभु को पाया।
लिया मिलन-फल, यह मनभाया,
विरह-बीज बो कर ही !
लूँगी क्या तुमको रो कर ही ?

६

फिर भी नाथ न आये।
लेने गये हाय! जो उनको, वे भी लौट न पाये।

रहे न हम सब आज कहाँ के,
वहाँ गये सो हुए वहीं के!
माया, तेरे भाव यहीं के,
वहाँ उन्हें क्यों भाये?
फिर भी नाथ न आये!

निज हैं उन्हें अन्य जन सारे,
भव पर विभव उन्होंने वारे।
पर हा! उलटे भाग्य हमारे,
निज भी हुए पराये।
फिर भी नाथ न आये!

इतने पर भी यहाँ जियूँ मैं,
अमृत पियें वे, अश्रु पियूँ मैं।
अपनी कन्था आप सियूँ मैं,
अपनापन अपनाये।
फिर भी नाथ न आये!

७

अब भी समय नहीं आया ?
कब तक करे प्रतीक्षा काया, जिये कहाँ तक जाया ?

होती है मुझको यह शंका, क्षमा करो हे नाथ,
समय तुम्हारे साथ नहीं क्या, तुम्हीं समय के साथ ?
कहाँ योग मनभाया ?
अब भी समय नहीं आया ?

तुम स्वच्छन्द, यहाँ आने में होगा क्या यति भंग ?
अपना यह प्रबन्ध भी देखो—अग्नि-सलिल का संग ?
मैं ने तो रस पाया !
अब भी समय नहीं आया ?

८

आली, पुरखाई तो आई, पर वह घटा न छाई,
खोल चंचु-पुट चातक, तू ने ग्रीवा वृथा उठाई।
उठ कर गिरा शिखण्ड, शिखी ने गति न गिरा कुछ पाई,
स्वयं प्रकृति ही विकृति बने तब किसका वश है माई!
किन्तु प्रकृति के पीछे भी तो पुरुष एक है न्यायी,
आशा रक्खो, आशा रक्खो, आशा रक्खो भाई!

९

सोने का ससार मिला मिट्टी में मेरा,
इसमें भी भगवान, भेद होगा कुछ तेरा।
देखूँ मैं किस भाँति, आज छा रहा अँधेरा,
फिर भी स्थिर है जीव किसी प्रत्यय का प्रेरा।
तेरी करुणा का एक कण
बरस पड़े अब भी कहीं,
तो ऐसा फल है कौन, जो
मिट्टी में फलता नहीं?

राहुल-जननी

यशोधरा

(गान)

भले ही मार्ग दिखाओ लोक को,
गृह-मार्ग न भूलो हाय !
तजो हे प्रियतम ! उस आलोक को,
जो पर ही पर दरसाय।

(राहुल का प्रवेश)

राहुल

अम्ब, यह दिन भी प्रतीक्षा में चला गया,
कोई समाचार नहीं आया उनका नया।
कौन जानें, जायगा न यों ही दिन दूसरा,
आई तुम-सी ही यह सन्ध्या धूलि-धूसरा !

देख, वे दो तारे शून्य नभ में हैं झलके,
गैरिकदुकूलिनी, ज्यो तेरे अश्रु छलके।

यशोधरा

किन्तु बेटा, तुझ-सा सुधांशु मेरी गोद में,
लाल, निज काल काट लूँगी मे विनोद में।

राहुल

जननि, न जानें, मन कैसा हुआ जाता है,
शून्य उदासीन भाव उमड़ा-सा आता है।
तात के समीप चला जाऊँ, बने जैसे मे,
किन्तु तुझे छोड ऐसे जाऊँ भला कैसे मे?

यशोधरा

बेटा, मुझे छोड गये तेरे तात कब के,
तू भी छोड जायगा क्या दुखिनी को अब के?
तेरे सुख में ही सदा मेरा परितोष है,
तेरे नहीं, मेरे लिए मेरा भाग्य-दोष है।
किन्तु जो जो लेने गये, वे रम गये वहीं,
एक भी तो लौट कर आया है यहाँ नहीं।

राहुल

मैं हूँ एक, लाकर उन्हें भी लौट आऊँ जो,
किन्तु कैसे जाऊँ ? तुझे छोड़ जाने पाऊँ जो।
मेरा ब्याह कर दे माँ। मेरी बहू आयगी,
पाकर उसे तू कुछ तोष तो भी पायगी।

यशोधरा

और मेरी चिन्ता छोड़ जायगा तू चाव से ?
हाय ! मैं हँसूँ या आज रोऊँ इस भाव से ?
मुझ-सी न रोयगी क्या तेरे बिना वह भी ?

राहुल

ओहो ! एक नूतन विपत्ति होगी यह भी।
सचमुच ! ध्यान ही न आया मुझे इसका।
झेल सके तुझ-सा जो, ऐसा प्राण किसका ?
बालिका बराकी वह कैसे सह पायगी ?
जल हिमवालुका-सी पल में बिलायगी !
मुझको प्रतीति हुई आज इस बात की,
मैं वर बनूँ तो मुझे हत्या बधू-घात की !

यशोधरा

पाप शान्त ! पाप शान्त ! बेटा यह क्या किया ?
एक नया सोच और तू ने मुझको दिया।

राहुल

माँ, माँ, क्षमा करदे माँ, दु:ख जो हुआ तुझे,
तेरी दशा सोच यही कहना पड़ा मुझे।
मैं क्या करूँ ? कोई युक्ति मेरी नहीं चलती,
तेरी हठशीलता ही अन्त में है खलती।
खो दिया सुयोग स्वय, चूकी हाय अम्ब, तू;
पाकर भी पा न सकी निज अवलम्ब तू।

यशोधरा

राहुल, सुयोग का भी एक योग होता है,
भोगना ही पड़ता है, जो जो भोग होता है।

राहुल

अपने किये पर क्या खेद नहीं अब भी ?

यशोधरा

खेद क्यों करूँगी वत्स ! दु:ख मुझे तब भी।

राहुल

आप ही लिया है यह दु ख तू ने, आप ही ।
अच्छा लगता है माँ, तुझे क्यों घोर ताप ही ?

यशोधरा

घोर तपस्ताप तेरे तात ने है क्यों सहा ?
तू भी अनुशीलन का श्रम क्यों उठा रहा ?

राहुल

तात को मिली है सिद्धि, पा रहा हूँ बुद्धि में ।

यशोधरा

लाभ करती हूँ इसी भाँति आत्मशुद्धि में ।
पाप नहीं, किन्तु पुण्यताप मेरा सगी है,
मरण-प्रसग में यही तो एक अगी है ।
त्राण मिलता है मुझे तात ! निज पीडा में,
प्राण मिलता है तुझे जैसे मल्ल-क्रीडा में ।
दु ख से भी जाऊँ ? मुझे उससे है ममता,
बढ़ती है जिससे सहानुभूति-समता ।

राहुल

कह फिर दुख से क्यों रह रह रोती है?

यशोधरा

और क्या कहूँ मैं, मुझे इच्छा यही होती है।

राहुल

अच्छी, नहीं, अम्ब, यह इच्छा की अधीनता,
और परिणाम जिसका हो हीन-दीनता।
तू ही बता, धर्म क्या नहीं है यही जन का—
शासित न हो कर माँ, शासक हो मन का?

यशोधरा

यह जन शासक न होता मन का यहाँ
तात! तो चला न जाता, धन उसका जहाँ?
भार रखती हूँ उस शासन का जब मैं,
हल्की न होऊँ नेक रो कर भी तब मैं?
चपल तुरङ्ग को कशा ही नहीं मारते,
हाथ फेर अन्त में उसे हैं पुचकारते।
रखती हूँ मन को दबा कर ही सर्वदा,
साँस भी न लेने दूँ उसे क्या मैं यदा कदा?

कण्ठ जब रुँधता है, तब कुछ रोती हूँ,
होंगे गत जन्म के ही मैल, उन्हें धोती हूँ।
शोक के समान हम हर्ष मे भी रोते हैं,
अश्रुतीर्थ में ही सुख-दुःख एक होते हैं।
रोती हूँ, परन्तु क्या किसी का कुछ लेती हूँ?
नीरस न हो रसा, मैं नीर ही तो देती हूँ।

राहुल

भूलती है मुझको भी तू, जिनके ध्यान में,
पाकर उन्हींको छोड बैठी किस भान में?
लाख लाख भाँति मुझे बहुधा मनाती है,
और निज देव पर दर्प तू जनाती है!
कैसी यह आन-बान, भीतर है मरती,
बाहर से फिर भी तू मिथ्या मान करती!

यशोधरा

तुझको मनाना पडता है, तू अजान है,
प्रभु के निकट ही तो मूल्य पाता मान है।
रुष्ट न हो, मैं नहीं हूँ वत्स, मिथ्याचारिणी,
दीना नहीं, दुःखिनी हूँ, तो भी धर्मधारिणी।

राहुल

कैसा धर्म ? तात ने क्या रोक दिया आने से ?—
नाहा कर बैठी स्वय जो तू वहाँ जाने से ?

यशोधरा

राहुल, न पूछ यह बात बेटा, मुझसे,
ठहर, कहेगी कभी तेरी वहू तुझसे।

राहुल

आह ! फिर मेरी वहू ? चाहे रहे तुतली,
किन्तु तेरे ज्ञान की यही है एक पुतली।
मेरे लिए अम्ब, बन बैठी तू पहेली है,
झूठी कल्पना ही आज जिसकी सहेली है।

यशोधरा

कल्पना भी सत्य हो, कृतित्व तभी अपना,
सच्चा करने के लिए बेटा, देख सपना।

राहुल

मैं तो यही देखता हूँ—तात नहीं आये हैं।

यशोधरा

आयँगे वे, आशा हम उनकी लगाये हैं।

(नेपथ्य में)

आ रहे हैं, आ रहे हैं, धन्य भाग्य सबके।

यशोधरा

एवमस्तु, एवमस्तु, निश्चय ही अब के—

राहुल

माँ, क्या पिता आ रहे हैं?

यशोधरा

बेटा, यह सुन ले,
जो जो तुझे चाहिए, उसे आ, आज चुन ले।

यशोधरा

१

रे मन, आज परीक्षा तेरी।
विनती करती हूँ मैं तुझसे,
घात न बिगड़े मेरी।

अब तक जो तेरा निग्रह था,
बस अभाव के कारण वह था।
लोभ न था, जब लाभ न यह था,
सुन अब स्वागत-भेरी!
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

दो पग आगे ही वह धन है,
अवलम्बित जिस पर जीवन है।
पर क्या पथ पाता यह जन है?
मैं हूँ और अँधेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

यदि वे चल आये हैं इतना,
तो दो पद उनको है कितना?
क्या भारी वह, मुझको जितना?
पीठ उन्होंने फेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

सब अपना सौभाग्य मनावें,
दरस-परस, निःश्रेयस पावें।
उद्धारक चाहें तो आवें,
रहे यहीं यह चेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

२

शेष की पूर्त्ति यही क्या आज ?
भिक्षुक बन कर घर लौटे हैं कपिलनगर-नरराज।

राजभोग से तृप्त न हो कर मानों वे इस बार
हाथ पसार रहे हैं जा कर जिसके-तिसके द्वार।
छोड़ कर निज कुल और समाज।
शेष की पूर्त्ति यही क्या आज ?

हाय नाथ! इतने भूखे थे, धीरज रहा न और ?
पर कब की प्यासी यह दासी बैठी है इस ठौर—
तुम्हारी—अपनी ले कर लाज।
शेष की पूर्त्ति यही क्या आज ?

स्वयं दान कर सकते हैं जो माँगें वे यों भीख!
राहुल को देने आये हो आज कौन सी सीख ?
गिरे गोपा के ऊपर गाज!
शेष की पूर्त्ति यही क्या आज ?

३

प्रभु उस अजिर में आगये, तुम कक्ष में अब भी यहाँ?
हे देवि, देह धरे हुए अपवर्ग उतरा है वहाँ।

सखि, किन्तु इस हतभागिनी को ठौर हाय! वहाँ कहाँ?
गोपा वहीं है, छोड कर उसको गये थे वे जहाँ।

बुद्धदेव

१

"अम्ब, आ रहे हैं ये तात,
शान्त हों अब सारे उत्पात।

ले, अब तो रह गई 'गर्विणी-गोपा' की वह लाज।
जितना रोना हो तू रो ले इनके आगे आज।
ओस तू, तो ये स्वयं प्रभात।
शान्त हों अब सारे उत्पात।

माँ, तेरे अञ्चल जैसी ही इनकी छाया धन्य,
पर इनका आलोक देख तो, कैसा अतुल अनन्य।
कौन आभा इतनी अवदात?
शान्त हों अब सारे उत्पात।

तात ! तुम्हारा तप मुखरित है, माँ का नीरव मात्र;
पर अथाह पानी रखता है यह सूखा-सा गात्र।
नहीं क्या यह विस्मय की बात ?
शान्त हों अब सारे उत्पात।

तुमको सिद्धि मिली है तप से, हुआ इसे क्या लाभ ?"
"वत्स ! इष्ट क्या और इसे अब, आया जब अमिताभ ?
प्रथम ही पाया तुझ-सा जात !
शान्त हों अब सारे उत्पात।"

२

मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान।
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह वह तत्रभवान।

किसको भिक्षा न लूँ, कहो मैं? मुझको सभी समान,
अपनाने के योग्य वही तो जो हैं आर्त्त-अजान।

राजभवन के भोगों में था दुर्लभ वह जलपान,
किया राम ने गुह-शबरी से जिसका स्वाद बखान।

शिक्षा के बदले भिक्षा भी दे न सकें प्रतिदान
तो फिर कहो, उऋण हों कैसे वे लघु और महान?

माना, तब दुर्बल था, तुमको मैं तज गया निदान,
किन्तु शुभे, परिणाम भला ही हुआ, सुधा-सन्धान।

यदि मैं ने निर्दयता की तो क्षमा करो प्रिय जान,
मैत्री-करुणा-पूर्ण आज मैं शुद्ध बुद्ध भगवान।

यशोधरा

पधारो, भव भव के
रखली मेरी लज्जा तुमने, आओ

नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी।
अपनाई मुझ-सी लघु नारी,
होकर महा
पधारो, भव भव के

मैं थी सन्ध्या का पथ हेरे,
आ पहुँचे तुम सहज सवेरे।
धन्य कपाट खुले ये मेरे!
दूँ अब क्या —
पधारो, भव भव के।

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे?
पा कर भी अपना धन आगे
भूली-सी मैं भान।
पधारो, भव भव के भगवान!

दृष्टि इधर जो तुमने फेरी,
स्वयं शान्त जिज्ञासा मेरी।
भय-संशय की मिटी अँधेरी,
इस आभा की आन!
पधारो, भव भव के भगवान!

यही प्रणति उन्नति है मेरी,
हुई प्रणय की परिणति मेरी,
मिली आज मुझको गति मेरी,
क्यों न करूँ अभिमान?
पधारो, भव भव के भगवान!

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये।
रोम रोम शुचि शीत हुए ये,
पा कर
पधारो, भव भव के भ॰

इन अधरों के भाग्य जगाऊँ।
इन गुल्फों की मुहर लगाऊँ।
गई वेदना, अब क्या गाऊँ?
मग्न हुई
पधारो, भव भव के

फिर रक्खा, यह कृपा तुम्हारी,
मैं पद-पद्मों पर ही वारी।
चरणामृत करके ये सारी
अश्रु करूँ अब
पधारो, भव भव के

बुद्धदेव

हीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से,
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को बार बार
अप्सरा-अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थी, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पंचशर वीर से।

अन्तिम अस्त्र, तुम्हारा रूप धरे एक अप्सरा आई,
किन्तु वराकी अपनी प्रवृत्ति पर आप काँप सकुचाई।

बतलाऊँ मैं क्या अधिक तुम्हें तुम्हारा कर्म,
पाला है तुमने जिसे, वही वधू का धर्म।

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये!
रोम रोम शुचि शीत हुए ये,
पा कर पर्वस्नान
पधारो, भव भव के भगवान

इन अधरों के भाग्य जगाऊँ।
इन गुल्फों की मुहर लगाऊँ।
गई वेदना, अब क्या गाऊँ ?
मग्न हुई मुसकान।
पधारो, भव भव के भगवान!

कर रक्खा, यह कृपा तुम्हारी;
मैं पद-पद्मों पर ही वारी।
चरणामृत करके ये खारी
अश्रु करूँ अब पान।
पधारो, भव भव के भगवान!

बुद्धदेव

दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से,
क्षीण हुआ वन में क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को बार बार
अप्सरा - अनीकिनी सजाये हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थी, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पचशर वीर से।

अन्तिम अस्त्र, तुम्हारा रूप धरे एक अप्सरा आई,
किन्तु बराकी अपनी प्रवृत्ति पर आप काँप सकुचाई।

बतलाऊँ मैं क्या अधिक तुम्हें तुम्हारा कर्म,
पाला है तुमने जिसे, वही वधू का धर्म।

यशोधरा

कृतकृत्य हुई गोपा,
पाया यह योग, भोग, अब आ तू,
आ राहुल, बढ़ बेटा,
पूज्य पिता से, परम्परा पा तू।

राहुल

तात, पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे,
प्रणत हूँ मैं इन पदों में मार्ग दिखलाओ मुझे,
असत से सत में, तिमिर से ज्योति में लाओ मुझे;
मृत्यु से तुम अमृत में हे पूज्य, पहुँचाओ मुझे।

तमसो मा ज्योतिर्गमय,
असतो मा सद्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

बुद्धदेव

मैं भी कृतकृत्य आज वीर वत्स, आ तू,
स्वाधिकार भागी बन भूरि भूरि भा तू।
सत्प्रकाश और अमृत एक साथ पा तू,
बुद्ध-शरण, धर्म-शरण, संघ-शरण जा तू।

राहुल

बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।

यशोधरा

तुम भिक्षुक बन कर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी।
मेरे दुख में भरा विश्वसुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी!
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामिऽ।

हरि ॐ शान्ति

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त लिखित

साकेत

यह अनूठा महाकाव्य कवि की आजीवन साधना का फल है। भाव, भाषा, माधुर्य, ओज और विषय सभी दृष्टियों से यह अभूतपूर्व है। इस काव्य से हिन्दी भाषा का मस्तक ऊँचा हुआ है। भारतीय संस्कृति का जैसा उज्वल आदर्श इसमें उपस्थित किया गया है, वैसा दूसरी जगह मिलना कठिन है। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शताब्दियों में एक-आध ही लिखे जाते हैं। मोटे ऐण्टिक कागज पर सुन्दरतापूर्वक मुद्रित। पृष्ठ संख्या ४५०। मूल्य ३)

गुप्त जी के अन्यान्य काव्य

गुरुकुल	२)	
हिन्दू	१)	१॥)
पञ्चवटी	।=)	
अनघ	॥।)	
स्वदेश-संगीत	॥।)	
त्रिपथगा	१॥)	
शक्ति	।)	
विकट भट	=)	
झङ्कार	॥=)	
भारत-भारती	१)	१॥)
जयद्रथ-वध	॥)	१)

प्रबन्धक,
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)